कविवर कन्हैयालाल सेठिया रचित

# गळगचिया

का

(हिन्दी रुपान्तरण)

डॉ. उम्मेदसिंह बैद 'साधक'

Published By
Dhriti Research Foundation
Loknath Abasan, 8A Kolupukur Road
Teghoria, kolkata - 700157

**Galgachiya**
**Hindi translation by Dr. Ummedsingh Baid**

ISBN : 978-81-926528-4-9
Published by Dhriti Research Foundation
Loknath Abasan,8A Kolupukur Road
Teghoria, Kolkata - 700157

1st Edition
June/2016
All rights reserved to Dhriti Research Foundation
Printed By Shreyansh Innovation Pvt. Ltd.
Poddar Point, 113 Park Street, Kolkata - 700016

Price : Rs. 200/-

गळगचिया (हिन्दी रुपान्तरण)
**डॉ. उम्मेद सिंह बैद 'साधक'**
**आवरण पृष्ट : श्री पथिक साहू**
**प्रकाशक** : **धृति रिसर्च फ़ाऊंडेशन**
**लोकनाथ आवासन, ८ए कोलुपुकुर रोड,**
**तेघरिया, कोलकाता – ७००१५७**
**मुद्रक** : **श्रेयांश इनोवेशन्स प्रा. लि.**
**पोद्दार पॉएन्ट, ११३ पार्क स्ट्रीट, कोलकाता – ७०००१६**

**मूल्य** : **रू २००/-**

----गळगचिया (कन्हैया लाल सेठिया)

# समर्पण

सहधर्मिणी स्नेहलता बैद
एवं
अनन्य प्रेरक स्वर्गीय जुगलकिशोर जैथलिया
को

# प्राक्कथन

यह रचना कविवर स्व. कन्हैयालाल जी सेठिया की राजस्थानी कृति 'गळगचिया' का हिन्दी रूपान्तरण / अनुवाद है। ठेठ राजस्थानी परिवेश एवं चिन्तनधारा को प्रतिबिम्बित करती, ये लघु रचनाएँ कविवर सेठिया जी के आध्यात्मिक एवं साहित्यिक दोनों मनोभूमियों का विस्तृत आभास देती है। जो कुछ कवि ने लिखा है, वह सिर्फ देखा ही नहीं है बल्कि जिया भी है। इसमें सामान्य जीवन-दर्शन, अपने इर्द-गिर्द के परिवेश, संचित अनुभव, मानव की संकीर्ण मानसिकता के साथ-साथ आत्मानुभूतियों का भी स्पष्ट संकेत है। रचना तो कविवर ने लोक धरातल पर ही किया है, जिसमें यह समग्र प्राकृतिक अवयव, जीवजन्तु, पेड़-पौधे यहाँ तक कि, चाँद, तारे, सूर्य भी सम्मिलित है, परन्तु इस में कवि के निजी आत्मानुभूतिपरक सत्यों की भी अनुगूँज है।

पाठकों के लिए इसमें कई बिन्दु हैं, जो उनकी चिन्तनधारा को गहराई से प्रभावित करेंगे, सोचने एवं जानने के लिए प्रेरित भी करेंगे। अपने ही विचारों की समालोचना एक अत्यन्त कठिन कार्य है, लेकिन किसी विज्ञ व्यक्ति के अनुभव का अनुसरण करने पर यह कार्य सरल बन जाता है। ठेठ राजस्थानी शब्दों का हिन्दी अर्थ देकर अनुवादक डॉ. उम्मेदसिंह बैद 'साधक' ने इस पूरी रचना को समस्त हिन्दी पाठक समाज के लिए बोधगम्य बना दिया है। भावार्थ एवं पाठार्थ के अंतर्गत दी गई पंक्तियां इस कृति में चार चाँद लगा रही हैं। रचना सभी वर्ग के पाठकों के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है।

— संजीव तिवारी

# स्वकथ्य

सेठियाजी का साहित्य जितनी बार पढता हूँ, उतनी बार आनन्द सरोवर में तन-मन को तरोताजा करने वाली डुबकी मिल जाती है। आनन्दातिरेक में सहधर्मिणी या बहूरानी को आवाज देता हूँ कि, सुनो यह क्या कह दिया है उस ऋषि ने ! अकसर सेठियाजी का नाम सुनकर वे निकट आ बैठती हैं, और आनन्द शत-गुणित हो जाता है। कभी मेरे कार्यव्यस्त बेटे-बेटी भी आ बैठते हैं, और देर तक चलता है यह आनन्द का दौर ! बेटा, बहू, और बेटी तो भौंचक हो सुनते हैं, सहधर्मिणी अवश्य किसी रचना-विशेष का मर्म बताने या पुनः सुनाने की मनुहार करती है। इस प्रसंग पर कोई भी पाठक-पति अपने हृदय में आनन्द का अनुभव कर सकता है कि, उसकी पत्नी एवं बच्चे पास बैठकर इस प्रकार सत्संग कर लें। मुझे भी एक-एक रचना को खोलकर कहने का लोभ होता है।

इस प्रकार की दूसरी-तीसरी सत्संग-बैठक के दौरान सहधर्मिणी कहती है कि, इन रचनाओं का ज्यादा आनन्द पढने की बजाय सुनने में आता है। पढने में कई बार शब्दों के अर्थ स्पष्ट नहीं होते, या फ़िर हिन्दी के प्रभाव में किसी और ही अर्थ में मन-मस्तिष्क उलझ जाता है। एक बार किसी भूल अर्थ की तरफ़ मन गया तो उसी दिशा में आगे के शब्दों को भी जबरन घुमाने की कोशिश शुरु हो जाती है। सहधर्मिणी का हरबार मेरे मुँह से सेठियाजी की छोटी छोटी रचनाएं सुनने, राजस्थानी भाषा-बोली का रस लेने और शब्दों के गहरे अर्थ समझने का आग्रह मेरे अन्तरतम को प्रेमानन्द से भिगो देता है। यह आनन्द मूल राजस्थानी में ही आता है, अनुवाद तो

उस आनन्दस्रोत तक पहुँचने में सहायक मात्र है। अलबत्ता इस अनुवाद कर्म में साधक ने उस ऋषितुल्य कवि का मन जानने समझने का भरपूर सुख पाया है।

लिखना मेरे लिए सदैव जीने का पर्याय है। या तो लिखने से पूर्व उसे जी लेता हूँ, या फ़िर लिखा जाने के बाद उसी को बार बार पढता हूँ; आलेख जब तक अजनबी होने का सुखद रोमाँच देता है, तब तक मानता हूँ कि अभी जीने में नहीं आया है। शब्द जब तक आचरण न बने तब तक मेरे किसी काम के नहीं। जो मेरे काम का नहीं, वह किसी पाठक को क्या देगा ? इसी कारण 'उद्भव, उत्कर्ष और अन्त; एक आध्यात्मिक क्रान्ति की आद्योपान्त समीक्षा' ग्रन्थ के बाद गत पाँच वर्षों में और कोई किताब प्रकाशित नहीं की। अन्तरताने पर शायद 14-15 आधी-अधूरी किताबें पढी जा रही हैं। पाठक उन्हें पूरा करने का आग्रह भी करते हैं, किन्तु साधक न तो पूर्व योजना के साथ लिखता है, न सोच सोच कर और न ही लिखते समय कोई सन्दर्भ ग्रन्थ सामने रखता है। "जो देखा सो लिखा, जो लिखा सो जिया, जो जिया सो कहा" – सूत्र कविवर सेठियाजी में देखा; उनकी रचनाओं का अनुवाद इसी कारण सुखद अनुभूति देता है। 'गळगचिया' का भावानुवाद न अथ है न इति; न शुरुआत है न कोई अन्त; एक अनन्त प्रवाह की लहरों का आनन्द है बस ! शब्द-परम्परा को कृतज्ञ प्रणाम !

—साधक



## अनुक्रमणिका


| | |
|---|---|
| मनुष्य का अंधेरा ! | १ |
| पीठ पीछे चर्चा | ३ |
| उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे | ५ |
| पहचान का आधार | ७ |
| जीत में हार | ९ |
| फूल बनना कली का | ११ |
| ताम्बा, माटी और घड़ा | १३ |
| भूख लँगड़ी नहीं होती | १५ |
| छिपाए न छिपे प्रेम | १७ |
| व्यर्थ बोझा क्यों ढोना ? | १९ |
| आँख बहरी, कान अँधा | २१ |
| मोम में डूबा, भीगा, घिरा धागा | १३ |
| अपने पैर, अपनी नजर | १५ |
| रास्ता ही मंजिल | १७ |
| पाप दृष्टि में है, न कि कर्म में | १९ |
| प्रयोजनीयता | ३१ |
| नजर अपनी अपनी | ३३ |
| रात या दिन | ३५ |
| अपनी अपनी भूमिका | ३७ |
| रंग नहीं, गुण पूजित | ३९ |
| मीठा मीठा गप्प, कड़वा थू ! | ४१ |
| हीरा बनाम बीज | ४३ |
| यादें | ४५ |
| निर्दयी मौत ! | ४७ |
| कथनी-करनी भेद | ४९ |
| सपना और सच | ५१ |
| फर्क | ५३ |
| होशियार तैराक | ५५ |
| घाणी का बैल ! | ५७ |
| काजल | ५९ |
| धूप और छाँव | ६१ |
| मतलबी तालाब | ६३ |
| खींचतान का फ़ल | ६७ |
| परस्परता | ६९ |
| ठीकरी | ७१ |
| ऊँट के लिए गिरवाण | ७३ |
| दिया और अंधेरा | ७५ |
| मोती, नारियल, तिल और तुम | ७७ |
| आँख में तिनका | ७९ |
| बूँद और समुद्र | ८१ |
| चाँदनी और मनुष्य का सत | ८३ |
| घड़ा बनाम छलनी | ८५ |
| समदर्शी आँख | ८७ |
| रोशनी और धुंआँ | ८९ |
| सूप स्वभाव | ९१ |
| मथानी | ९३ |
| काँटे और सुई | ९५ |
| काँटे की शिकायत ? | ९७ |
| मौत | १०१ |
| आँसू और हँसी | १०३ |
| मोती और धागा | १०५ |
| विष बनाम अमृत | १०७ |
| थोथी ऊँचाई | १०८ |
| शिशु की नजर से सूर्य | १०९ |
| श्रृंगार और खुराक | १११ |
| पुण्य और पाप | ११३ |
| परनिन्दा | ११७ |
| पकने का महत्व | ११९ |
| नीम और तरबूज की बेल | १२१ |
| दिन और रात | १२३ |

## मनुष्य का अंधेरा !

मूल पाठ - सिंझ्या हूँता ही मिनख उठ्यो'र दीयै रै मूंडै ऊपर तूळी मेल दी। दीयो चट्ट चट्ट कर'र बोल्यो – बड़ा आदमी इयाँ के करै है ? मिनख हँस'र बोल्यो – अरे तूं हो के ? मन्नें अंधेरै में सूझ्यो ही कोनी !

### शब्दार्थ

सिंझ्या = सांझ, मिनख = मनुष्य, दीयै = दीपक, मूंडै = मुखपर, तूळी= जलती माचिस।

### पाठार्थ

शाम होते ही आदमी ने दीपक के मुँह पर जलती माचिस रख दी। चट-चट की आवाज में चीखता दीपक बोला – भले आदमी ! यह जुल्म क्यों ? आदमी ने हँसकर अपनापन दिखाते हुए कहा – अरे तुम थे क्या ? मुझे तो अंधेरे में नजर ही नहीं आया।





### भावार्थ

चालाक इन्सान हंसते-हंसते पेट में छुरा उतार देता है। पल-पल गिरगिट की तरह रंग बदलता है। ज्ञानावस्था की इकाई मानव का आचरण अनिश्चित अतः अविश्वसनीय है। सृष्टिरचना की अन्य तीनों अवस्थाओं की सभी इकाईयों का आचरण स्थिर और नियमानुसार है, अतः विश्वसनीय है। तुर्रा यह भी कि कोई भी आदमी स्वयं पर इस अविश्वसनीयता के आरोप को स्वीकार नहीं करता; सब स्वयं को स्थिर, सच्चा और विश्वसनीय ही मानते हैं। अपनी कमजोरी को स्वीकार करना सही पदक्षेप होता है। सामान्य जन उन्हें 'महामानव' की संज्ञा दे देते हैं। अपने दोषों का निवारण करने जैसा होता है, मानवता की दिशा में इसी आश्चर्यजनक तथ्य को कवि ने कलात्मक भाषा दी है।

मनुष्य स्वयँ को सर्वश्रेष्ठ मानता है, सृष्टिरचना क्रम में ऐसा है भी। संभवतः इस तर्क पर स्वयँ को शेष तीनों अवस्थाओं से किसी भी मामले में कमतर स्वीकार न करे। कुत्ते की घ्राणशक्ति ज्यादा, शेर-हाथी आदि का दैहिक बल ज्यादा, अनेक जीव-जन्तुओं में प्राकृतिक आपदाओं को पहले से भाँप लेने की अतिरिक्त क्षमता और लगभग सभी मानवेतर जन्तुओं का बिना डॉक्टर-दवा के स्वस्थ हो जाने की नैसर्गिक क्षमता भले ही मान ले, किन्तु यह मानने को तैयार नहीं होगा कि वह गिरगिट से ज्यादा रंग बदलने वाला, साँप से ज्यादा जहरीला, लोमड़ी से ज्यादा चालाक और बगुले से ज्यादा धोखेबाज होता है। स्वयँ का यह सत्य स्वयँ नहीं मानता, तो दूसरों को ऐसा मानने का अवसर भी नहीं देना चाहता; इसी चेष्टा में आदमी के दो रूप हो जाते हैं। प्रस्तुत गळगचिया दर्पण है, आदमी अपने दोनों रूप इसमें देख सकता है; अच्छा है कि देख ही ले।

सन्दर्भ – आचार्य तुलसी (उद्भव,उत्कर्ष और अन्त ...), पौराणिक पात्र हरिश्चन्द्र, राजा शिवि और युधिष्ठिर आदि, महामानवों के उदाहरण। जबकि चालाक इन्सानों से भरा पड़ा है संसार, यही धरती की पीड़ा है। सभी तरह के प्रदूषण आदमी के अनिश्चित आचरण के परिणाम हैं। (पर्यावरण – प्रकाशमान ग्रन्थ, विश्व विषाद योग), मानव केन्द्रित मध्यस्थ दर्शन।

## पीठ पीछे चर्चा

बायरो कयो – पीपळ रा पानड़ाँ, मैं आऊँ जणाँ ही हताई हुवै के ?
पानड़ा बोल्या – पूठ पाछै बात करण री म्हाँरी आदत कोनी !

## शब्दार्थ

बायरो = पवन का झोंका, पानड़ा = पत्ते, हताई = सँवाद, पूठ पाछे = पीठ के पीछे, म्हाँरी = हमारी।

## पाठार्थ

पवन झकोरा बोला – अरे पीपल के पत्तों ! मैं जब-जब आता हूँ, तभी तुम्हारी बातचीत शुरु होती है; आखिर बात क्या है ? पत्तों ने जवाब दिया – किसी के पीठ पीछे बात करने की हमारी आदत नहीं है।





## भावार्थ

प्राणावस्था की सामान्य इकाई पत्तों की बात आम आदमी को बहुत प्रेरक लगती है, अर्थात हर आदमी में सही के लिए स्वीकृति है ही। इससे भी आगे बढकर हर इन्सान स्वयं के बारे में यह मानता है कि वह किसी के पीठ पीछे उसकी बुराई-चुगली-निन्दा आदि नहीं करता, जबकि यह सर्वसामान्य लक्षण है; मनुष्य परनिन्दा का रस लेता है।
प्रतियोगिता में उतरना और हर हाल में जीतना सिखाया जाता है समस्त संस्थानों में, जबकि प्रकृति की पाठशाला में सहज प्रसन्नता का सन्देश है। मोगरे का फूल अपनी सफ़ेदी छोड़कर गुलाब की तरह लाल-पीला नहीं होना चाहता और कोई गधा-घोड़ा अपने सिर पर बैल जैसे सींगों की कामना नहीं करता ! चींटी अपने कद-पद में खुश है, तो हाथी को अपना शरीर भारी नहीं लगता। यह आदमी ही है, जो स्वयँ के होने में चिर असंतुष्ट है; स्वयँ से कुछ भिन्न होने के लिए मरा जा रहा है।
हर एक व्यक्ति दूसरे से आगे होने की चेष्टा करता है, इस क्रम में संस्थान बनता है; फ़िर संस्थानों की प्रतियोगिताएं शुरु होती हैं; एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए राजनेताओं की तरह निन्दा, चुगली, झूठे-सच्चे दोषारोपण और पीठ पीछे षड़यन्त्रों का खेल साफ़ दिखाई देता है; यही तो है परनिन्दा ! पेड़ के पत्ते परनिन्दा नहीं करते।

## उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे

पग कयो – काँटा, चुभ'र किस्यै जलम रो बैर काढ्यो ?
काँटो बोल्यो – अरै खुरड़ा, मनैं ही गिट'र मनैं ही डँडै है के ?

### शब्दार्थ

खुरड़ा = पैर, गिट'र = निगलकर, डँडै = दण्ड दे रहा है, भय का डंडा दिखा रहा है, झूठा आरोप लगा रहा है, ईत्यादि।

### पाठार्थ

पैर ने दर्द से कहा – काँटे, तुमने चुभकर किस जन्म का बैर निकाला है ? काँटा अपनी वेदना से तड़पकर कहता है, 'अरे दुष्ट, मुझे ही निगलकर मुझे ही दण्डित करता है !'





### भावार्थ

किसी एक घटना के प्रभाव अलग-अलग वस्तुओं पर अलग होते हैं। कुम्हार के घड़े सूखने के लिए धूप की मांग है, तो किसान की फ़सलों को बारिश की। काँटा चुभने की घटना एक है किन्तु इसपर आदमी और काँटे की प्रतिक्रियाएं विपरीत होनी ही है। इस समान्य सी विडम्बना को कवि ने सीधे-सरल शब्दों में कह दिया है। कवि का संवेदनशील मन सृष्टि की प्रत्येक इकाई के साथ एकात्मभाव से संवेदित होता है, काँटे के दर्द को काँटा बनकर महसूस करता है। मनुष्य के पैर में काँटा घुसा और मनुष्य ने सारा गुस्सा काँटे पर निकाल दिया, यह भी न सोचा कि काँटा स्वयँ चलकर नहीं आया पैर में घुसने ! मनुष्य चला उस रास्ते, जिसपर बिचारा काँटा विश्राम करता है। चला भी तो काँटे से बेखबर, बेफ़िक्र, जैसे काँटे की कोई सत्ता ही न हो ! अपने दर्द से बिलबिलाता मनुष्य सोच लेता है कि आखिर यह काँटे होते ही क्यों हैं ? अब प्रकृति ने यदि मनुष्य जितनी सुविधा काँटे को दे दी होती, तो काँटा भी यही कहता कि यह मनुष्य होता ही क्यों है, जिसका पैर जब तब हमें गटक ले ? आखिर इस मनुष्य की जरुरत क्या है सृष्टि में ? और इस तर्ज पर कितने वोट आदमी के विरुद्ध पड़ेंगे, कोई गणना है ? सृष्टि की कौन सी इकाई मनुष्य के पक्ष में वोट करेगी ? क्यों करेगी ? अपने पक्ष में कहने को क्या है मनुष्य के पास ? काँटा तो फ़िर भी फूल की रक्षा करता है, फूल की खिलखिलाहट और ज्यादा काल तक डाली पर बने रहने में काँटे का योगदान है, मनुष्य का योगदान ? गळगचिया प्रश्न करता है मित्रों !

सन्दर्भ – जैनदर्शन के अनेकान्त का यह सही दृष्टान्त है। काँटा बनकर काँटे का मन समझा जा सकता है, इसी सूत्र को कवि ने एक अन्य सन्दर्भ में कहा है – "निर्ग्रन्थ की रचना करते समय मैं महावीर बन गया।"

## पहचान का आधार

दूबड़ी पूछ्यो- झरणां, तू चनेक ही सिचल्यो कोनी रवै, तूं पून को जायोड़ो है के ? झरणो बोल्यो – भली पिछाण करी ? मैं तो डूंगराँ रै जायोड़ो हूँ, जका पसवाड़ो ही को फ़ैरै नीं।

### शब्दार्थ

चनेक = एक पल, सिचल्यो = स्थिर, जायोड़ो = पैदा हुआ, पिछाण = पहचान, डूंगराँ = पर्वतों, पसवाड़ो = करवट।

### पाठार्थ

दूब ने पूछा – झरने, तू क्षणभर भी स्थिर नहीं होता; क्या पवन की पैदाईश है ? झरना बोला – भली पहचान की ! अरे मैं तो पर्वतों की पैदाइश हूँ, जो करवट तक नहीं बदलते !





### भावार्थ

मजेदार प्रतीक और उससे भी मजेदार बात है। सामान्यतः कहा जाता है कि वस्तु जहां से पैदा होती है, उसके गुणधर्म साथ लेकर चलती है; जैसा बीज होता है, वैसा ही फ़ल भी होता है; या फ़िर कहावत है 'जैसा बाप वैसा बेटा !' इस कसौटी पर झरने की चंचलता देखकर उसे पवन की पैदाइश होना चाहिए, जबकि वे चिर-स्थिर पर्वतों की पैदाइश हैं ! अब झरना, पवन और पहाड़ तीनों ही सृष्टिरचना के पदार्थ-प्राणावस्था की इकाइयाँ हैं अतः इनके आधार पर ज्ञानावस्था की इकाई मानव के साथ तुलनीय नहीं हैं, किन्तु परम्परा से ही मानवी व्यवहार की अनेक विसंगतियों का विश्लेषण इस आधार पर किया जाता रहा है। जातक कथाएं अधिकतर इस प्रकार के उदाहरणों को कसौटी बनाती हैं। प्राइमरी कक्षाओं में प्रेरक-कथाओं के रूप में मान्य हैं।

'बेटा बाप पर, बेटी मां पर' सूत्र को न सिर्फ़ नयन-नक्स पर बल्कि सम्बन्धित जन की सोच और व्यवहार पर भी लागू कर देते हैं ! यह जानते हुए भी कि हिरण्याकश्यपु का बेटा प्रह्लाद है, रावण का भाई विभीषण है, एक ही कुरुवंश की सन्तानों के बीच आचार-विचार भेद के फ़लस्वरूप महाभारत घटित हुआ, और अभी अभी किसी महात्मा गाँधी की सन्तान उसके उपदेशों के नितान्त प्रतिकूल जीवन जी चुकी है ? यह सब दृष्टान्त चयनित अपवाद नहीं हैं, बल्कि सर्व सामान्य परिवार में पिता-पुत्र के बीच वैचारिक-भावनात्मक खाई 'जेनेरेशन गेप' के नाम से स्वीकृत तथ्य है।

कवि रचित यह गळगचिया कुछ हटके सोचने को बाध्य करता है। वंशानुगतता मनुष्येतर जीवराशि में तो ठीक, किन्तु 'मनुष्य' अपनी सर्वथा स्वतन्त्र सोच के चलते इस समीकरण को झुठलाता है।

मनुष्य वंशानुगत नहीं, संस्कारानुगत इकाई है।

सन्दर्भ – मध्यस्थ दर्शन। नन्हीं सी उड़ान, धोती-शतक।

## जीत में हार

सूई, तूं फूलाँ रो काळजो छेक'र काँई काढ्यो ? डोरो तो हार में ही रहग्यो पण तूं तो जीत में रै'र ही नागी-बूची ही रही।

### शब्दार्थ

काळजो = कलेजा, छाती, छेक'र = छेदकर,

### पाठार्थ

सूई को उलाहना मिलता है कि उसे फूलों का सीना चीरकर क्या मिल गया ? धागा भले ही 'हार' में रह गया हो, सूई तो अन्त में नंगी-फ़िरंगी ही रही !





### भावार्थ

साहित्यिक सम्प्रास का बहुत प्यारा सा बिम्ब उकेर दिया है कवि ने। सूई से फूलों का सीना चीरना हार बनाने की सामान्य प्रक्रिया है, इसे संवेदनापूर्वक देखकर मानवी 'हार-जीत' स्पर्धा के साथ जोड़ दिया। 'हार' की पीड़ा को ही फूलों का 'हार' बना कर 'जीत' को अपनी औकात बता दी। वैसे स्पर्धाओं में 'जीत' किसी की होती नहीं। हारने वाला तो सिर्फ़ बाजी हारा, किन्तु जीतने वाला सब कुछ लुटाकर स्वयं को तमाशा बना लिया ! इस समीकरण को वर्तमान न्याय-तन्त्र के सन्दर्भ में अधिक स्पष्ट देखा-समझा जा सकता है। दीवानी मुकदमें ज्यादातर निकट सम्बन्धियों या घनिष्ठ मित्रों के बीच सम्पत्ति-विवाद को लेकर चलते हैं। पीढीयां मर-खपने के बाद जब हार-जीत का फ़ैसला आता है, तो सारी जोड़-बाकी लगाकर जीत की खुशी मनाने के लिए न मन रहता है, न समाज में मान और न ही सामान ! धागे-विहीन सुई की सी स्थिति बनती है, नागी-बूची !
हार बनाने की शुरुआत में सुई के साथ लम्बा धागा जुड़ा रहता है, जैसे-जैसे सुई अधिकाधिक फूलों का सीना चीरती जाती है, वैसे-वैसे धागा छोटा होता जाता है; 'हार' पूरा होते ही सुई धागे से विलग निपट अकेली रह जाती है; धागा फूलों की 'जीत' के रूप में उनके कब्जे में होता है।
कौन जीता, कौन हारा ? सुई या फूल या फ़िर कोई तीसरी इकाई; जिसके गले की शोभा बनने वाला है यह 'हार' ?

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त...; नन्हीं सी उड़ान

## फूल बनना कली का

गाछ स्यूं कळी रो मन फ़ाटग्यो। लोग कह्यो-कळी फूल बणगी।

### शब्दार्थ

गाछ = पेड़ या पौधा,

### पाठार्थ

पेड़ से विरक्त हुई कली, लोगों ने कहा – कली फूल बन गई।





### भावार्थ

बिटिया सयानी हुई, अब बाबुल के प्यार से मन उचट गया; प्रीतम का प्यार पाकर मन खिल जाता है। सहज प्राकृतिक विधान है, प्राणावस्था जीवावस्था और ज्ञानावस्था की सभी इकाईयों के साथ यह तथ्य प्रमाणित है।

कली के फूल बनने की प्रक्रिया में भँवरे, तितली सहित मानव-प्रेम का भी सीधा योगदान है। प्रेम की ही अभिव्यक्तियाँ हैं सब; न हो प्रेम तो कोई भी कली फूल न बने ! प्रयोजन क्या है कली के पास खिलकर फूल बनने का ? निष्प्रयोजन तो कुछ होता नहीं !

निष्प्रयोजन तो प्रेम के बाधक तत्व भी नहीं हैं। कितनी दीवारें खड़ी करता है समाज प्रेम के मार्ग में ! पैसा, धर्म, देश, शिक्षा, परम्परा, राजनीति, देशों की सीमाएं और भी जाने क्या क्या अवरोध हैं। और इनमें से प्रत्येक अपनेआप में अटूट किलेबन्दी की तरह समर्थ हैं; प्रेम ने कब स्वीकारा इनको ? कब भयभीत हुए प्रेमी ? कब कोई कली बची फ़ूल बनने से ? भले मिट गई, किन्तु मिटने से पहले निश्चय दोहरा गई कि वापस खिलेगी किसी डाली पर और फ़ूल बनकर महकाएगी किसी प्रेमी की सांसें !

और इस सारी प्रक्रिया में विरोध की भी एक सकारात्मक भूमिका है। यह विरोध प्रसव की पीड़ा बनकर परिणाम को और दृढता प्रदान करता है। जितना ज्यादा विरोध, उतनी यशस्वी कहानियाँ बनती हैं प्रेम की ! सहज स्वीकृति पूर्वक हुई शादियों की भी क्या कहानी ? वह तो एलोपैथी जीवनशैली से उपजी सिजेरियन सन्तान हैं; चम्मच मुँह में दबाए स्वयँ बीमार और परिजन-परिवेश को नई-नई समस्याएं देती मर जाएंगी !

कली का मन फ़टना अपने आपसे सँघर्ष करना है, वह जारी है; वर्तमान है।

सन्दर्भ – मध्यस्थ दर्शन, नन्हीं सी उड़ान,

## ताम्बा, माटी और घड़ा

ताम्बै रो कळसो माटी रै घड़ै न कयो- घड़ा, थारै में घाल्योड़ो पाणी ठंडो कियां रैव'र म्हारै में घाल्योड़ो तातो कियां हु ज्यावै ?
घड़ो बोल्यो – मैं पाणी नै म्हारै जीव में जग्यां द्यूं हूँर तूं आँतरै राखै, ओ ही कारण है।

### शब्दार्थ

कळसो = कलश, घल्योड़ो = भरा हुआ, डाला हुआ; आँतरै = दूर

### पाठार्थ

ताम्बे के कलश ने माटी के घड़े से पूछा – तुममें रखा पानी शीतल कैसे हो जाता है, और मुझमें रखा जल गरम कैसे हो जाता है ?
घड़े का उत्तर – मैं पानी को अपने अन्तर में जगह देता हूँ जबकि तुम उसे दूर-दूर रखते हो, यही कारण है।





### भावार्थ

सारा जादू प्रेम का है। जिसको भी प्रेम से गले लगा लो, वह अपना हो जाता है, शीतल हो जाता है। दूरियां सन्देह और संघर्ष पैदा करती हैं, उस ताप से चौतरफ़ा गर्मी होती है। व्यापक फ़लक पर पर्यावरण की गर्मी अथवा धरती के गर्म होने का राज भी यही है कि इन्सान परस्पर प्रेम से नहीं रहता।
प्रेम एक ऐसी आग है जो शीतलता देती है। माटी का घड़ा कुम्हार के चाक से उतरकर तेज आँच की भट्टी में पकाया जाता है। पानी को शीतलता देने की क्षमता एक अनुभूत वैज्ञानिक प्रक्रियापूर्वक पैदा की जाती है। आश्चर्य न होगा यदि यह पता चले कि मिट्टी के इतने कलात्मक-वैज्ञानिक पात्र सिर्फ़ भारत में ही बनते हों; पाकिस्तान, बँगलादेश तो वैसे भी सांस्कृतिक भारत के ही टूटे राजनैतिक हिस्से हैं !
दार्शनिक दृष्टि से ज्ञानयोग और कर्मयोग का समन्वय भक्तियोग में होना प्रेम की सत्ता का प्रतीक है। भक्ति किसी अन्य सत्ता की तरफ़ समर्पण है जबकि प्रेम स्वयँ अपने भीतर जागी नैसर्गिक घटना।
मिट्टी के घड़े में पानी का ठंडा होने और ताम्बे के घड़े में गर्म होने की सर्वसामान्य घटना को गळगचिए में देखना, कण-कण में उसी परमसत्ता का स्पर्श पाने जैसा अहसास है। अपने हर अहसास को शब्दबद्ध करना कठिन होता है। सेठियाजी शब्द-चितेरे हैं।

सन्दर्भ – आनन्दिनी मीरां,; टूटता भारत; संस्मरण शतक;

## भूख लँगड़ी नहीं होती

दूबड़ी कयो – गाय, चर तो भलाँईं, पण चींथ मती।
गाय बोली – काँईं करूँ ? रामजी म्हारी भूख नै पाँगळी को बणाई नीं।

### शब्दार्थ

भलाँईं = भलेही, चींथना = रौंदना, चिकोटी काटना या खींच कर अलग करना, पाँगळी = लँगड़ी।

### पाठार्थ

दूब बोली - ओ गाय, भले ही मुझे चर लो, पर रौंदो मत। गाय का प्रत्युत्तर - क्या करूँ, रामजी ने मेरी भूख को लँगड़ी नहीं बनाया।





### भावार्थ

नियमतः सब इकाइयों की अपनी-अपनी सीमा है जिसे अपने सन्दर्भ में आदमी 'विवशता' कह देता है। सृष्टिरचना में हर क्रिया प्रयोजन सहित है। गाय के खुरों से न सिर्फ़ दूब रौंदी जाती है बल्कि आसपास की जमीन भी रौंदी जाती है। भारत में आम किसान मानता है कि गाय के खुरों से रौंदी जाकर जमीन अधिक उर्वरा हो जाती है, और दूब अधिक खिल जाती है। समान्तर दृष्टान्त अपने शिशु को स्तनपान कराती माता का आनन्द है। पीड़ा और आनन्दातिरेक में फ़र्क करना मुश्किल
हो जाता है। वैसे ही कली का फ़टकर फूल बनना, बीज का फूटकर अंकुर बनना, मरणान्तक प्रसव-वेदना पूर्वक शिशु के क्रन्दन का आनन्द !
यहाँ गाय के खुरों से रौंदा जाना दूब के लिए भी आनन्द का विषय है। यह आनन्द की ही अभिव्यक्ति है कि - 'मुझे चर लो, पेटभर कर खा लो मुझे; पर कम से कम रौंदो तो मत ! ' भली प्रकार जानते-समझते हुए कि रौंदना-चींथना भी चरने का ही एक अविभाज्य हिस्सा है, यह प्यारी सी शिकायत हो जाती है। अपनेपन का इजहार है हर शिकायत ! गाय के साथ एकात्म और अपनापन ही दूब की शिकायत का आधार है।
दो को एक कर देता है प्रेम !

सन्दर्भ – औसान; विश्व विषाद योग-1; धोती शतक

## छिपाए न छिपे प्रेम

तिरियाँ मिरियाँ भरी तळाई रै दूबड़ी आ'र गळबाथ घाल ली। लैराँ चिड़'र बोली- तनै कुण नूंती ही ? बीच में ही मींडको टर टर कर'र बोल्यो- गैली अपणायत हुवै जका नूंतै न को अडीकै नीं!

### शब्दार्थ

तिरियाँ मिरियाँ = लबालब, गळबाथ = आलिंगन, नूंतना = निमन्त्रित करना, मींडको = मेंढक, अपणायत = अपनापन, अडीकना = इन्तजार करना।

### पाठार्थ

लबालब भरी तलाई (बरसाती तालाब) से दूब आलिंगनबद्ध हुई। लहरों ने चिढकर कहा – तुम्हें किसने बुलाया था ? बीच में ही मेंढक की टर्र-टर्र हुई – अपनेपन में निमन्त्रण का इन्तजार नहीं किया जाता।





### भावार्थ

बारिशजन्य आनन्द के प्रतीक उठाए हैं कवि ने। लबालब भरी तलाई का आनन्द लेती मचलती लहरें दूब के साथ चुहल करती हैं कि तुम कहाँ से तालाब के आलिंगन का सुख लेने टपक पड़ी ! इन सबका हमराज मेंढक चुहल की धार को और तीखा करते हुए मानव-सापेक्ष लोकोक्ति ठोक देता है कि जब इतना प्रेम उमड़ रहा हो तो निमन्त्रण का इन्तजार कोई कैसे करे ?
बरसात, पानी की बहुलता से तालाब की रचना, जल के संयोग से दूब और मेंढकों का आँखे खोलना और उन सबका साझा आनदोत्सव; यही है इस गळगचिए की बनावट। एक ही परिवार के सदस्य हैं सारे, तो परस्परता का आनन्द नैसर्गिक उपहार है। यह नैसर्गिक उपहार अनगिनत आयामों में मनुष्य को भी उपलब्ध है, फ़िर मनुष्य इतना उदास-परेशान क्यों ? क्यों नहीं वह एक शिशु की तरह बेफ़िक्र लीलाएं करता ? क्यों स्वयँ उलझनों में फ़ंसता और अपने परिवेश को फ़ंसाता है ? अवश्य इसके लिए कड़ा प्रशिक्षण प्राप्त किया है मनुष्य ने ! और यह प्रशिक्षण निरन्तर चल रहा है, समूचा तन्त्र जी-जान से लगा है इस प्रशिक्षण प्रक्रिया में ! अनजाने चल रहा है, क्योंकि जानबूझकर इतनी मूर्खता होना संभव ही नहीं है। अनजाने चल रही मूर्खता को कोई स्वीकार भी कैसे करे ? क्या उल्लू और चमगादड़ कभी यह स्वीकार करते हैं कि सूरज चमक रहा है, दिन हो गया है और अब मुझे अपनी अंधेरी गुफ़ा में उल्टे लटके रहने की कोई आवश्यकता नहीं है ?
सारे प्रतीक मनुष्यों को लक्ष्य करके उठाए गए हैं, थोड़े से प्रयत्न से यह कोई भी स्वीकार लेगा; किन्तु स्वयँ को सन्दर्भ से दूर ही रखेगा !
वाह रे मनुष्य ! वाह रे वाह !
सन्दर्भ - उद्भव, उत्कर्ष और अन्त..., विश्व विषाद योग-1; टूटता भारत; श्राद्ध

## व्यर्थ बोझा क्यों ढोना ?

एक छाँट पड़ी'र दूजी छाँट पड़ी, बादळियो अरडाट कर'र ओसर यो। आभो बोल्यो – अरै तूं तो माल मलीदो बाँध'र ऊपर ल्यायो हो नीं ? पाछो नीचै ही कियां खिंडा दियो ?
बादळ कयो – ऊपरां कठेई मेलण नै ठौड़ ही को लादी नीं, बोझायो कती'क ताळ मरै हो ?

### शब्दार्थ

अरडाट = गड़गड़ाहट, ओसरना = बरसना, टपकना, खिंडाना = बिखेरना, ठौड़ = जगह, ताळ = समय।

### पाठार्थ

एक बूँद टपकी और दूसरी टपकी, बादल गरज कर बरस गया। गगन ने टोका – अरे भाई, तू बड़े उत्साह के साथ सागर से माल भरकर ऊपर लाया था, वापस नीचे क्यों पटक कर बिखेर दिया ?
बादल ने कहा – ऊपर उसे सहेजकर रखने के लिए कोई जगह ही न मिली, आखिर मैं बोझा कबतक ढोता ?





### भावार्थ

बहुत मासूम और सुन्दर प्रतीक हैं, कवि-मन को लुभाते हैं। मानवीय संवेदनाओं को गुदगुदाते हैं। अर्थ तो सारा स्पष्ट ही है, बस भाव भिगोते हैं। कोरे शब्द या सूखा अर्थ शुष्कता देता है।
बात तो सीधी सी है कि बादल समुद्र से पानी भरकर ऊपर गया ही बरसने के लिए है ! समुद्र के खारे पानी को जाने किस तकनीक से मीठा बनाकर ले जाता है बादल ! सृष्टि-रचना की अद्भुत रासायनिक प्रक्रिया है यह जिसे मानव अब तक अपनी प्रयोगशाला में न ला सका है ! अनन्त आकाश में विचरते बादल कहाँ बरसेंगे, इसकी भी पूर्व निश्चित योजना-प्रक्रिया है, मनुष्य की कोशिश से जहाँ-तहाँ न बरस जाएगा बादल ! यह सारी बात गगन भी जानता है, क्योंकि उस महाशून्य की उपस्थिति में ही घटता है सारा आयोजन ! तथापि स्वयँ गगन पूछता है बादल से कि प्रयत्नपूर्वक लाया पानी नीचे क्यों बिखेर दिया ?
पहेली है यह। और जैसे हर पहेली का उत्तर उसी पहेली में गुंथा रहता है, कि हल खोजने वाला आनन्द ले। सारा अयोजन ही आनन्द का है। जैसे हर पहेली का हल उस पहेली में पहले से ही रख दिया गया है, वैसे ही मनुष्य की हर समस्या का समाधान उसीमें रख दिया गया है ! बिना समाधान के कोई समस्या पैदा ही नहीं होती, जैसे कि कोई भी परीक्षक ऐसा प्रश्न नहीं करता जिसका उत्तर उसके पास पहले से सुरक्षित न हो ! और इस सृष्टि में कोई रहस्य है भी नहीं। मानव के लिए हर प्रश्न का उत्तर वर्तमान है, हर पहेली का हल उपलब्ध है और हर समस्या का समाधान स्वयँ उसी के पास सुरक्षित है। इतना सुरक्षित कि कोई अन्य उसे ठीक से देख न सके। हर मनुष्य की समस्या हल सहित नितान्त व्यक्तिगत है, गोपनीय है। कोई अन्य न उसे समझ सकता है, न कोई समाधान सुझा सकता है। समाधान सुझाने वाले सारे प्रतिष्ठान शुद्ध रूप से नकली दुकानें हैं।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त....;विश्व विषाद योग; रामचरितमानस और वेद; साँप

## आँख बहरी, कान अँधा

आँख्याँ बहरी है'र कान आँधा है, आ ही भली हुई ! नहीं तो देख जियां सुणलै'र सुणै जियां ही देख लै'क तो परलै पार हूँता के ताळ लागै ?

### शब्दार्थ

परलै पार = भवसागर के पार,

### पाठार्थ

आँखे बहरी हैं और कान अँधे, यही अच्छा है। अन्यथा जैसा देखा, वैसा ही सुन लिया जाए और जो सुना वही प्रत्यक्ष दिखाई पड़ जाए तो मानव भवसागर से पार ही है।





### भावार्थ

गहरे दार्शनिक और आध्यात्मिक बिम्ब भर दिए हैं सेठियाजी ने। भारत का अनपढ ग्रामीण किसान भी आसानी से कह देता है कि भगवान सब जगह अभी मौजूद हैं। अब यह तथ्य सहमतिपूर्वक कहते-सुनते तो सभी हैं, किन्तु कौन भगवान को देख पाया ? एक सजायाफ़्ता चोर भी अपने निर्दोष होने का दावा करता है, पर उसकी इस निर्दोषिता को कौन देख या आंक पाता है ? 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मन्त्र चिरकाल से आम भारतीय दोहराता तो है, पर उसका साक्षात्कार होता है किसी को ?

जो सुना जाता है, वह दिखाई नहीं देता। शायद बोलने वाले को भी नहीं दिख रहा है। तोते की तरह दोहराए जा रहा है राम राम राम राम !

और जो साफ़ दिखता है, उसे कहने के लिए शब्द नहीं होते ! शिशु के पास अभी सांसारिक शब्द नहीं जुड़े, इसीलिए उसके लिए आँखों देखा ही अन्तिम प्रमाण है। उसे किसी तर्क या प्रमाण की जरुरत ही नहीं ! उसे कौन सी स्कूल की परीक्षा में पास होना है ? बच्चा सब शुभ ही शुभ देखता है, क्योंकि शुभ के सिवा अन्य कुछ है भी नहीं । शुभ अर्थात शिव ! वही सत्य, वही सुन्दर ! निर्विच्छिन्न रूप से 'सत्यं शिवं सुन्दरम' जब सामने हो तो आँखे चमकती ही रहेंगी। शिशु का रोना-मचलना भी उसकी लीला बन जाता है। और यह सारा शुभ बिना आँखों के भी दिखाई दे जाता है। ऐसी कीमीया है जिसके लिए चर्म-चक्षुओं की जरुरत ही नहीं। सूरदास ने देखा, जबकि उसके आस-पास सब आँख वालों को न दिखाई दिया। आँख वाले देखकर भी नहीं देख पाते, तो इससे तो अंधा ही बेहतर !

जो बोला गया है, वही नहीं सुना जाता। कुछ का कुछ सुन लिया जाता है। क्या सुन पाए इस गळगचिए की आवाज ?

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ..., विश्व विषाद योग -1; साँप; श्राद्ध.

## मोम में डूबा, भीगा, घिरा धागा

मैणबत्ती कयो – डोरा, मैं थारै स्यूं कत्तो मोह राखूं हूं ? सीधी ही काळजै में ठौड़ दीन्हीं है।
डोरो बोल्यो – म्हारी मरवण, जणा ही तिल तिल बळूं हूँ।

### शब्दार्थ

मैणबत्ती = मोमबत्ती, बळना = जलना, मरवण = ऐतिहासिक प्रेमकथा ढोला-मारु की नायिका।

### पाठार्थ

मोमबत्ती बोली- ओ धागे, मैं तुमसे इतना प्यार करती हूँ कि अपने कलेजे में बिठा रखा है। धागे ने कहा – तभी तो तिल तिल कर जल रहा हूँ प्रिये !





### भावार्थ

मरवण शब्द का अद्भुत अर्थ बनता है इस प्रकरण में ! मरवण याने जिसके कारण मरना प्रिय हो जाता है। दूसरी तो संज्ञा है-प्रेमिका का नाम ही 'मारू' –मरवण। धागे को बचाने मोम पिघलता-जलता है, और मोमबत्ती के प्रेम में धागा रेशा-रेशा जलता है। प्रेम का यह अद्भुत संगम घोर अंधियारे को रोशन करता है।
इस संवाद में धागे की स्वीकृति मुख्य है।
धागा मोम से घिरा है, मोम में ही डूबा है। मोमबत्ती जलने पर जो मोम पिघला, उसी में भीगा रहता है धागा। तिल-तिल करके जल रहा है, पर उससे बाहर आने की कोई कोशिश नहीं है धागे की ! यह अलग बात है कि उसकी कोशिश कोई काम भी न आएगी, किन्तु उपद्रव तो हो ही जाएगा; जैसा कि मनुष्य के इसी प्रकार के प्रयत्न से लगातार उपद्रव चल रहा है; स्वीकृति नहीं है अपने होने की; अपने आप से निरन्तर असंतुष्ट है मनुष्य ! जबकि धागे की तरह वह भी डूबा-भीगा-घिरा है, सम्पृक्त है।
डूबा-भीगा-घिरा है एक महाशून्य से; एक अदृश्य सत्ता से; एक अद्भुत व्यवस्था से, जो अपने आपमें कोई व्यवस्था ही नहीं है। इस महाशून्य से बाहर निकलने का कोई उपाय भी नहीं है, क्योंकि कोई आवश्यकता भी नहीं है। मनुष्य की प्रेय-श्रेय सारी आवश्यकताएं इसी डूबे-भीगे-घिरे होने से वर्तमान हैं।
धागा प्रकाश करता है, मोम में डूबे-भीगे-घिरे रहकर सहर्ष जलने से।
मनुष्य भी प्रकाश का स्रोत बन सकता है इसी प्रकार।
अद्भुत है इस गळगचिए से खेलना।

सन्दर्भ – उद्भव...; विश्व विषाद योग -1; संस्मरण शतक

## अपने पैर, अपनी नजर

डूंगर री चोटी परां चढ'र कीड़ी नीचै देख्यो तो हाथी बकरी जतो'र ऊँट सुसियै जतो'क ही लाग्यो। कीड़ी घणी राजी हु'र बोली – अबै को डरूँ नीं। बैम स्यूं ही बडाळ दीखै हा।

खाथी खाथी चाल'र नीचै आई तो फ़ेरूँ हाथी डूंगर जतो'र ऊँट हाथी जतो'क दीख्यो। घबड़ा'र डूंगर नै पूछ्यो, चनेक में ही ओ फ़रक पाछो कियाँ पड़ग्यो ?

डूंगर मुळक'र बोल्यो – पैली आँख्याँ थारी पण पग म्हारा हा, अबै आँख्याँ'र पग दोन्यूं थारा निज रा है।

### शब्दार्थ

डूंगर = पहाड़ी, सुसिया = खरगोश, बैम = वहम, बडाळ = काफ़ी बड़ा, खाथी खाथी = जल्दी जल्दी, तेज कदमों से, चनेक = क्षणभर, मुळकना = मुस्कुराना।

### पाठार्थ

पहाड़ी की चोटी पर चढकर चींटी ने नीचे देखा तो हाथी बकरी जितना और ऊँट खरगोश जितना दिखाई दिया। बहुत खुश होकर चींटी ने सोचा – अब नहीं डरती, वहम से बड़े दिखते थे।

तेजी से चलकर नीचे आई तो फ़िर से हाथी पहाड़ जैसा और ऊँट हाथी जैसा दिखने लगा। घबराकर पहाड़ से पूछा कि क्षणभर में ही यह अन्तर कैसे आ गया ? पहाड़ मुस्कुराकर बोला – पहले आँखे तुम्हारी किन्तु पाँव मेरे थे। अब आँखे और पाँव दोनों तुम्हारे हैं।





### भावार्थ

दार्शनिक कवि ने अपनी पैनी नजर से मानव जीवन को विराट फ़लक पर देखा है। चींटी, हाथी, पहाड़ी आदि प्रतीकों में आम आदमी की दुविधा को कारण सहित पकड़ा है सेठियाजी ने। आम आदमी बड़े दम्भ से किसी विचार को "यह मेरा सिद्धान्त है" कहता है, तो अक्सर वह किसी पूर्व पुरुष प्रणीत दार्शनिक ग्रन्थों से रटे-रटाए सूत्र होते हैं, अर्थात आँखे किसी और की होती हैं; कवि इशारा कर रहा है कि किसी और की आँखों से किसी को सत्य के दर्शन नहीं हुआ करते ! इसी प्रकार किसी और के पैरों से चलकर मंजिल नहीं मिला करती ! चलना अर्थात चरण बढाना अर्थात किसी और के जैसा आचरण करना। अब ओशो ने सेक्स के चंगुल से मुक्त होने की दिशा में 'संभोग से समाधि' के संकेत दे दिए तो वैसा आचरण अपनाकर किसी को समाधि तो नहीं मिली ? मध्यस्थ दर्शन प्रणेता बाबा नागराज ने वेद, कुरान,आगम, त्रिपिटक आदि सभी दर्शनों की भर्त्सना कर दी तो उनके जैसा आचरण ओढकर कोई जीवनविद्या का दुकानदार गीता रामायण को बेकार कह दे तो उसकी 'जागृति' हो न हो सिर पर जूते तो जरूर पड़ेंगे। मंजिल पाने के लिए अपनी आँखे और अपने ही पैर आवश्यक हैं। कहावत भी है कि – "खुद मरे बिना स्वर्ग नहीं मिला करता किसी को" ! चींटी, हाथी, ऊँट, खरगोश और पहाड़ी को प्रतीक बनाकर यही संदेश दे रहे हैं कविवर सेठियाजी !

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त...; श्राद्ध, नन्हीं सी उड़ान, औसान

## रास्ता ही मंजिल

गेलो पगाँ पड़सी जद मजलाँ मतै ही मुंडागै आ ज्यासी।

### शब्दार्थ

गेलो = रास्ता, मजलाँ = मंजिल, मुँडागै = सामने

### पाठार्थ

रास्ते पर पाँव सक्रिय हुए तो मंजिल खुद ही सामने आ जाएगी!





### भावार्थ

चरैवेति का संदेश है यह गळगचिया ! आदमी बस कदम बढा दे, मंजिल मिलनी ही मिलनी है। चले; मगर बार-बार मार्ग न बदले, अपना विश्वास अडिग रखे, डावाँडोल होकर रास्ता न बदले; तो हर रास्ता राही को मंजिल की तरफ़ ही ले जाता है। गीतागायक ने खूब कहा है, - "ये यथा मां प्रपद्यन्ते, ताँस्तथैव भजाम्यहम्।।..." इसे ऐसा भी कहा जा सकता है कि मंजिल वास्तव में रस्ते से भिन्न कुछ है नहीं। जो कुछ प्राप्तव्य है, वह सदा से सबको प्राप्त ही है; स्वयँ से भिन्न कुछ पाना नहीं है। स्वयँ को जान लेना ही स्वयँ को पा लेना है।
ज्ञानावस्था की एकमात्र इकाई है मानव; जबकि शेष तीनों अवस्थाओं में इकाइयों का बाहुल्य है। मानव के लिए है जानने की क्रिया; सारी जिज्ञासाओं और प्रश्नों का जँजाल मानव के मस्तिष्क में है; अन्य किसी को न तो कोई प्रश्न-जिज्ञासा सताती है, न ही कोई उलझन दुविधा!
सेठियाजी का यह गळगचिया एक पहेलीनुमा सुन्दरता लिए है। लिखते हैं – "गेला पगाँ पडसी = रास्ते खुद पाँव के नीचे आएंगे; न कि पग गे'ल पडसी = पैर रास्ते पर चलेंगे" रास्ते खुद पाँव के नीचे आ जाते हैं, तब मंजिल सामने ही है। मँजिल सामने ही है, उसके लिए एक कदम भी चलना नहीं है; अर्थात रास्ते खुद ही मंजिल हैं। पहेली है, सुलझाओ मित्रों!

सन्दर्भ - उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ...; धोती शतक, औसान,

## पाप दृष्टि में है, न कि कर्म में

कोरी मटकी में भर्योड़ो पाणी टोपो टोपो कर'र पाछो झरग्यो। कनैं ही पड़यो फूट्योड़ो घड़ो चिड़'र बोल्यो – हिया'र दिया फूट्योड़ा मिनख, ईं सापतै में'र म्हारै में काँईं फ़रक रह्यो ? आँख्याँ दीखतो ही पाप हुवै जणाँ'स बात न्यारी है।

### शब्दार्थ

कन्नैं = पास, चिड़'र = चिढकर, सापतै = साबूत, पूरा, हिया'र दिया फूट्योड़ा = मुहावरा है – हृदयहीन और चक्षुहीन व्यक्ति का विशेषण;

### पाठार्थ

कोरी मटकी में भरा जल बूँद बूँद करके झर गया। पास ही पड़ा फ़ूटा घड़ा चिढकर बोला – अँधे और हृदयहीन मनुष्य, इस साबूत घड़े और मुझमें अन्तर क्या रह गया ? आँखों देखा ही आप मान लो, बात अलग है !





### भावार्थ

कोरी मटकी का जल बूँद-बूँद झरते हुए बाहर आता है, जबकि फूटी मटकी से तत्काल बाहर हो जाता है; पानी को तो बाहर आना ही है; इसी बात को अपने हित में सशक्त तर्क बनाता है फूटा घड़ा ! आदमी को ज्ञान देने पर आ तुला है कि मुझमें और साबूत कोरे घड़े में कोई फ़र्क नहीं है, सब घड़े एक से ही हैं; उससे भी तुमको काम लेना है, मुझसे भी वही काम ले सकते हो ! अरे भाई सारे सम्प्रदाय एक समान हैं, अब तक इसे आजमाया, अब मुझे आजमाने में क्या हर्ज ? या फ़िर काँग्रेस, वामपन्थ और भाजपा में कोई फ़र्क नहीं है; बारी-बारी से आजमाकर देख लो ! अब आदमी इस तर्क का क्या करे ?
अब ठीकरी के तर्क से इन्कार होना कठिन है। जैसे सन 2014 आम चुनावों के परिणाम के बाद टीवी पर चलती नाना विषयक बहसों में किसी भी पक्ष के तर्क के विरुद्ध सामान्य निष्पक्ष श्रोता को कोई तर्क गलत नहीं लगता। घनघोर तर्क चलता है, और बिना किसी निष्कर्ष के बहस का समय शेष हो जाता है। श्रोता अन्ततः ठगा सा रह जाता है कि हुआ क्या, या करना क्या है, या कौन सही कौन गलत है ? अब फूटे मटके के तर्क में क्या दोष है कि पानी तो उसमें से भी निकला, मुझमें से भी निकला; फ़र्क क्या है ? जैसे आजकल तर्क चलता है कि नारी-पुरुष में भेद कैसा ? सबका एकसा अधिकार, एक से व्यवहार की आशा-अपेक्षा ! यौन-शोषण का दोषारोपण पुरुष पर लगाते समय कुछ दूसरा ही तर्क आ जाता है ! एकसाथ चलते हैं दोनों तरह के तर्क ! फूटे मटके के तर्क पर हँसने से पहले खुद पर हँस लेना अच्छा है।

सन्दर्भ – औसान, गणेशजी का सिर (नन्हीं सी उड़ान), संस्मरण शतक

## प्रयोजनीयता

पान पीळा पड़ता देख'र माळी रो चैरो पीळो पड़्यो ! फ़ल पीळा हूँतां देख'र माळी रै मूंडै परां ललाई आ'गी।
टाबर रै काळूंस लगायो'क नीजर नहीं लाग ज्यावै ! कागज रै काळूंस लगायो'क नीजर लागै !

## शब्दार्थ

माळी = बागवान, चैरो = चेहरा, ललाई = लालिमा, काळूंस = काला टीका, स्याही

## पाठार्थ

पत्ते को पीला पड़ता देखकर बागवान का चेहरा चिन्ता से पीला पड़ गया ! फ़ल को पीला होता देखकर बागवान के चेहरे पर हर्ष-लालिमा आ गई !
सुन्दर बच्चे के चेहरे पर काला टीका लगाया ताकि नजर न लगे। कागज पर काली स्याही से लिखा कि सबकी नजर लगे ?





## भावार्थ

महत्व किसी घटना का नहीं, उस घटना से होने वाले प्रभाव या परिवर्तन का है। पीला होने की घटना पत्ते के साथ घटे तो बागवान को चिन्ता मगर यही पीलापन फ़ल पर दिखाई दे तो हर्ष ! पत्ते का पीलापन उसकी बीमारी का लक्षण है, जबकि फ़ल का पीलापन उसके पककर मीठा होने का ! काला टीका बच्चे को बुरी नजर से बचाने का साधन है, जबकि कागज पर काली लिखावट पठनीय सामग्री ! महत्व परिणाम का है, न कि घटना का ! कसौटी है प्रयोजनीयता। फ़ल की प्रयोजनीयता उसके पकने में है ताकि वह मानव को मीठा लगे, उसमें पौष्टिकता आए। पत्ते का पीलापन उसके पककर पेड़ से झड़ने की सूचना देता है। बागवान के लिए पेड़ की सुन्दरता प्रयोजनीय है, जो पत्ते के झड़ने से कम हो जाती है। बागवान की दृष्टि से फ़ल पीला होकर अधिक कीमत में बिकेगा, अधिक लाभ देगा; जबकि पत्ते के पीला होने में बागवान को कोई लाभ नहीं, उल्टा पेड़ की सुन्दरता कम होने का नुकसान अधिक है।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त, संस्मरण शतक

## नजर अपनी अपनी

पून कयो – हिरणां म्हारै स्यूं होड मती करो !
हिरण बोल्या – बावळी तनै होड सूझै है, म्है तो गंडकाँ स्यूं डरता घर ल्याँ हाँ।

### शब्दार्थ

पून = पवन, होड = प्रतियोगिता, बावळी = पगली, गंडका = कुत्ता,

### पाठार्थ

पवन ने कहा – हिरणों ! मेरे साथ बराबरी मत करो ! हिरण बोले – तुझे प्रतियोगिता सूझ रही है पगली, हम तो कुत्तों के भय से घबराकर घर भाग रहे हैं।





### भावार्थ

हिरन, कुत्ते और पवन प्रतीक हैं, बात आदमी के भ्रम की हो रही है। कोई हिन्दू अपने संस्कार और स्वास्थ्य के निमित्त कहीं एकत्र होकर पूजा-पाठ या कुश्ती-दंगल का अभ्यास कर रहा हो तो किसी को शिकायत हो जाती है कि उसके मजहब को खतरा है ? भारत की प्रतिष्ठा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ी तो पाकिस्तान को अपने अस्तित्व पर ही खतरा दिखाई दे जाता है। सब भयभीत, सब आशंकित। यह भय और आशंकाएं मानव गत हैं, हिरन, कुत्ता आदि कोई भयभीत नहीं, न ही पवन के साथ किसी की कोई बातचीत हो रही है ! बातचीत की सुविधा सिर्फ मनुष्य को मिली है, व्यक्त होना सिर्फ 'व्यक्ति' के लिए है; शेष इकाइयाँ प्रकृति सहज आचरण करती हैं, किसी अन्य इकाई के साथ न तो उनकी कोई दौड़-होड़ है, न कोई प्रतियोगिता का मुद्दा बनता है। प्रतियोगिता का सारा व्यापार-विस्तार मानव की सीमा में है।

भावार्थ = भाव + अर्थ। भाव और अर्थ दोनों ही मानव के विचारार्थ विषयवस्तु हैं, अन्य इकाइयाँ 'भावार्थ' का कोई प्रयोजन ही नहीं पातीं। अर्थ-वस्तु सहित भाव की सर्वदा वर्तमान उपलब्धता में उनका निश्चित आचरण होता है। हिरन कुत्ते का निश्चित आचरण जानते हैं कि वे आक्रमण करेंगे, सो अपनी जान बचाने के लिए भागते हैं। पवन व हिरन के बीच कोई प्रतियोगिता नहीं यह बात सभी जानते हैं। बस मानव का आचरण नितान्त अनिश्चित और अविश्वसनीय है। मासूम तोते थोड़े ही जानते हैं कि इस मीठी मुस्कान वाले आदमी ने उनके खाने के लिए दाने नहीं डाले, बल्कि उन्हें फंसाने के लिए जाल बिछाया है।

सन्दर्भ – श्राद्ध, शीना हत्याकाण्ड शतक.

## रात या दिन

बापड़ी रात तो ताराँ नै पाल्या-पोस्या पण ओ सूरजियो कुळ-नासी है।

### शब्दार्थ

बापड़ी = बेचारी, पाळ्या-पोस्या = पालन पोषण किया

### पाठार्थ

बिचारी रात ने तो तारों का पालन-पोषण किया, किन्तु कुलनाशी तो सूरज निकला!





### भावार्थ

सूरज दिन का प्रतीक है। उसके उगते ही रात अपने कुल सहित गायब हो जाती है, न चन्दा रहता है न रात के मेहमान तारे! पूरे कुल का ही नाश कर देता है सूरज!

साहित्यिक प्रतीकों में सूरज के हिस्से सदैव गौरव और मान आता है, जबकि रात के हिस्से में लाँछन आदि नकारात्मक भाव ! दूसरी तरफ़ चाँद तारों की गणना सुन्दर प्रतीकों में होती है। इसी विरोधाभास में से कवि ने मानदण्ड बदल दिया। सूरज को सीधा ही 'कुलनाशी' जैसी कलंककारी उपमा दे दी। संभवतः सुख दुःख के बीच संतुलन साधने की चेष्टा रही हो अन्तरमन में! 'जो दिखता सो लिखता है कवि' सूत्र सेठियाजी की रचनाओं का मर्म है; सामान्य जन सूरज के साथ सारा कुछ अच्छा जोड़ देते हैं, तो रात के हिस्से में भी प्रकृति ने बहुत कुछ रखा है। सुख सभी को चाहिए, किन्तु दुःख, कष्ट और पीड़ाओं का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है; उसे देखने दिखाने के लिए बना है यह गळगचिया ! खेल के देखें, आनन्द आएगा।

सन्दर्भ – श्राद्ध, नन्हीं सी चिड़िया, फ़िल्म इक दूजे के लिए का गीत – ए, प्यार तेरी पहली नजर को सलाम।

## अपनी अपनी भूमिका

रूँखड़े परां पंखेरू एक एक तिणखलो चुग'र आळो घाल्यो !
आँधी आई'र आँख फ़रूकै जतै'क में आळै न ले उडी ।
रूँखड़ो कयो – आळो तो म्हारै डील परां हो तूं धिंगाणै ही कियां अणखी ?
आँधी बोली – थारै डील पराँऊँ किस्यो म्हारो गेलो को बगै नीं ?

### शब्दार्थ

रूँख = पेड़, तिणखलो = तिनका, आळो = घोंसला, आँख फ़रुकना = पलकें झपकाना, डील = शरीर, धिंगाणै = जबरदस्ती, अणखना = चुभना, न सुहाना,

### पाठार्थ

पेड़ पर पक्षी ने एक एक तिनका चुनकर घोंसला बनाया । आँधी आई और पलक झपकते ही घोंसले को ले उड़ी ! पेड़ बोला – घोंसला तो मेरे शरीर पर बना था, तुमको क्या कष्ट दे रहा था ? आँधी बोली – तेरे शरीर पर से क्या मेरा आना-जाना नहीं होता ?





### भावार्थ

आँधी अपना काम करती है, उसे किसी पक्षी के घोंसले और पेड़ की संवेग-संवेदनाओं से क्या लेना-देना ? इसी प्रकार अस्तित्व में होता वही है, जो होना होता है ! घटना-दुर्घटना का समीकरण मानव की अपनी सोच है, उससे कहीं कुछ आता-जाता नहीं ! हर क्षण परिवर्तन सृष्टि का नियम है, परिवर्तन किसी को पसन्द हो या नापसन्द; अस्तित्व किन्हीं निश्चित नियमानुसार संचालित है । इन्हीं नियमों को धर्म की संज्ञा प्राप्त है । इससे निरपेक्ष होना असंभव है । शब्दों का अर्थ विरुद्ध प्रयोग मानव और समाजों को उलझन, भ्रम और नाना संकटों में फ़ंसाता है । धर्म अपरिवर्तनीय है, अटल और अपरिहार्य है; इससे निरपेक्षता का विधान निरी मूर्खता है ।
आँधियाँ वनस्पति जगत को स्थिरता और सार्थकता देने में सहायक बनती हैं । बन्द सुरक्षित कमरों में रखे गमलों के पौधे निस्तेज और अल्पजीवी होते हैं, जब कि खुले जंगल में बिना किसी प्रायोजित सुरक्षा के पौधे मजबूत और दीघजीवी वृक्ष बनते हैं । मनुष्य के जीवन में भी आया तूफ़ान गुजर जाने के बाद वह स्वयँ को ज्यादा समर्थ और आगे पाता है ।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ... अन्तिम कवर; नन्हीं सी उड़ान आदि ।

## रंग नहीं, गुण पूजित

रूँख रै पत्ताँ में लुक्योड़ी कोयलड़ी बोली – कुहू। मारग बैंता बटाऊ नीजर उठा'र बोल्या – आ कठै'क बोली ? रूँख री ऊँचली टोखी पर बैठ'र कागलो बोल्यो – कुराँ कुराँ ! कोई आँख उठा'र ही को देख्यो नीं।

### शब्दार्थ

लुक्योड़ी = छिपि हुई, मारग बैंता = रास्ते चलता, बटाऊ = राही, टोखी = डाल,

### पाठार्थ

पेड़ के पत्तों के बीच छिपी कोयल बोली – कुहू ! रास्ते चलता राही नजरें उठाकर बोला – ये कहाँ से बोली ? पेड़ की ऊपरी डाल पर बैठकर कौवा बोला – कुराँ कुराँ। किसी आँख उठाकर भी नहीं देखा।





### भावार्थ

कोयल का मधुर स्वर जन-गण का मन लुभाता है, कौवे का कर्कश शोर किसी को पसन्द नहीं। 'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात असत्यमप्रियम' मानवी आचरण का दिशा-निर्देशक सूत्र है। मीठा बोलने वाला स्वयँ को कितना भी गोपन रख ले, वह हर्ष सहित चर्चित होगा, जबकि कर्कश शब्द और स्वर आत्मीय परिजनों को भी नहीं भाते।

सूत्र सीधा है कि जो स्वयँ के लिए कामना करते हो, वही दूसरों को दो।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ... का न पसन्द किया जाना। श्राद्ध। संस्मरण शतक

## मीठा मीठा गप्प, कड़वा थू !

बादळवाई रो दिन। मधरो मधरो आथूणूं बायरो चालै। खेजड़ी उपरां बैठी कमेड़ी बोली 'टमरक टूं'।
नीचै छ्याँ में सूतो मिनख सोच्यो – किस्यो'क सोवणूं पंखेरू है! अतै में कमेड़ी बींठ करी, सीधी आ'र मिनख रै उपराँ पड़ी, मिनख झुंझळा'र बोल्यो – किस्यो'क बदजात जीव है।

### शब्दार्थ

बादळवाई = मेघाछन्न आकाश, आथूणू = पश्चिमी, अस्तांचल दिशा से, खेजड़ी = राजस्थान का प्रसिद्ध पेड़, छ्याँ = छाया, सोवणूं = मनभावन, बींठ = पक्षी का मल, कमेड़ी = राजस्थानी कोमल जाति का एक पक्षी

### पाठार्थ

मेघाछन्न दिवस्। मन्द मन्द पश्चिमी हवाएं चल रही हैं। खेजड़े पर बैठी कमेड़ी बोली – टमरक टूं! नीचे छाया में लेटा मनुष्य सोचता है – कितना सुहाना पक्षी है! इतने में कमेड़ी ने मलत्याग किया, जो सीधा आकर आदमी पर गिरा। आदमी झुँझलाकर बोला – कैसा दुष्ट जीव है?





### भावार्थ

सन्दर्भ बदलते ही बदल जाता है मनोभाव। जबतक मनभावन मिलता रहे, स्वार्थसिद्धी होती रहे; तबतक प्रीत है; एक भी विपरीत कार्य पिछली समस्त अच्छी करनि पर पानी फिरा देता है। मानवी रिश्तों के बीच यह कड़वा सत्य सभी के ध्यान में आता है, किन्तु कोई कार्यकारी समाधान नहीं मिलता; क्योंकि सामान्यतः मानव किसी से उपदेश सुनना नहीं चाहता। कवि ने कमेड़ी सरीखे लोक-लुभावन पक्षी को प्रतीक बनाकर यही बात सरलता से कह दी, इसे कोई भी मुस्कुराकर स्वीकार लेता है। 'गळगचिया' खेल खेल में सबका मन मोह ही लेता है।

सन्दर्भ – नन्हीं सी उड़ान; धोती शतक

## हीरा बनाम बीज

चमकीलो हीरो धूळ में पड़'र आँधो हुग्यो । गुदमैलो बीज धूळ में पड़'र आँख्याँ खोल'र उपरां आ'ग्यो ।

## शब्दार्थ

धूळ = मिट्टी, गुदमैलो = मटमैला

## पाठार्थ

चमकता हीरा मिट्टी में गिरकर अँधा हो गया । मटमैला बीज मिट्टी में दबकर आँखे खोलकर ऊपर आ गया !





## भावार्थ

बेशकीमती चमकते हीरे और नाकुछ मूल्य वाले मटमैले बीज के बीच तुलना की है कवि ने । कसौटी बनाया है दोनों की जननी माटी को ! माटी की कोख से जन्मा हीरा इतरा कर चमकता है कि वह किसी सुन्दरी नवयौवना के गले पर सजता है, राजाओं के मुकुट पर वास करता है; किन्तु उसे मा-माटी की गोद नहीं सुहाती ! माटी में गिरकर अँधे हो जाने का मुहावरा लोकजीवन में पैसे के प्रभाव-दुष्प्रभाव को इंगित करता है । दूसरी तरफ़ नाकुछ उपलब्धियों वाला बीज; मटमैला दिखता बीज; जिसकी बाजार में कोई कीमत नहीं आँकता; जिसकी कोई चर्चा नहीं होती; जिसे सामान्यतः उपेक्षा-तिरष्कार ही मिलता है; वह माँ-माटी की गोद में सोकर निहाल हो जाता है, खिलखिलाकर आँखें खोलता अंकुर बनकर ऊपर आ जाता है; जन-जन की क्षुधा निवारण का साधन बन जाता है; धन्यता प्राप्त करता है । धन के अधिमूल्यन पर गहरा कटाक्ष किया है कवि ने !

सन्दर्भ – श्राद्ध, उद्भव उत्कर्ष और अन्त;

## यादें

पंखेरू कयो – रूँखड़ा, थारै पराँ तो अगणित पंखेरू आवै'र चल्या जावै, तूं सगळां री याद किंया राखै है ? रूँख बोल्यो – म्हारो एक एक पानड़ो एक एक आये गयै री याद है।

## शब्दार्थ

थारै = तुम्हारे, सगळां = सबकी, आये गये = मेहमान

## पाठार्थ

पक्षी ने पूछा – हे वृक्ष ! तुम पर तो अगणित पक्षी आकर रुकते और चले जाते हैं, सबकी याद कैसे रख लेते हो तुम ? वृक्ष बोला – मेरा एक-एक पत्ता एक-एक मेहमान की याद है।





## भावार्थ

अपने निकट आए प्रत्येक पखेरू को प्रेम सहित शरण देता है वृक्ष ! निर्मोही पक्षी भले भूल जाए, पर वृक्ष प्रत्येक की यादें संजोए रखता है। बदलते मौसम के साथ नए-नए मेहमानों के स्वागत में अपनी साज-सज्जा बदलता है; उनका मान भरा इन्तजार करता है। हवाओं के सुर में सुर मिलाकर पत्ते इन मेहमानों के प्रति स्वागत-अभिवादन गान करते हैं। फूल महकते हैं, खिलखिलाते हैं; फल रस से भर जाते हैं; डालियाँ झुक-झुक कर मेहमानों के आने का शुक्रिया अदा करती हैं। वृक्ष का अंग-प्रत्यंग नृत्य करता है, हर्षाता है। जितने अधिक विहग, उतना खिलखिलाता है वृक्षराज ! उत्सव मनाता है, सबको बुलाता है, सबके साथ अपनी खुशियाँ बाँटता है। सृष्टि-रचना के इस अद्भुत सौन्दर्य को अनुभव करके कवि की कलम से उतरा 'गळगचिया' भला किसका मन न मोह लेगा !

सन्दर्भ - औसान, श्राद्ध

## निर्दयी मौत !

बन्दूक उठा'र दाग दी, बापड़ो पंखेरू तड़फ़ड़ा'र नीचै आ पड़यो, लोग कयो किस्योक हुँस्यार ठाईदार है ! दूसरै दिन घड़ी री चाल बन्द हू'र ठाईदार मरग्यो, लोग कयो – मौत किसी'क निरदई है !

## शब्दार्थ

ठाईदार = निशानची, घड़ी री चाल बन्द होना = मनुष्य की हृदयगति रुकना (मुहावरा), निरदई = निर्मम, निर्दय

## पाठार्थ

बंदूक उठाकर दाग दी, बिचारा पखेरु तड़फ़ड़ाकर नीचे आ गिरा; लोगों ने तारीफ़ की – कितना सच्चा निशानेबाज है ! दूसरे दिन हृदयगति रुकने से निशानची की मौत हो गई, लोगों ने कहा – मौत कितनी निर्मम है ?





## भावार्थ

मनुष्य के भिन्न मानदण्डों पर कटाक्ष किया है कवि ने ! मनुष्य ने पक्षी को बन्दूक की गोली से उड़ाया तो उसकी तारीफ़, और मौत ने मनुष्य पर सहजता से वार किया तो उसपर निर्मम होने का आरोप ? निर्ममता तो मनुष्य ने दिखाई जो आकाश में अपनी मौज में उड़ते मासूम पक्षी पर अकारण गोली चला दी ! तपते लोहे सी गर्म गोली से तड़फ़ता पक्षी जान देता है, लोग उस पर दया दिखाने की बजाय निशानेबाजी पर ताली बजाते हैं; यह है निर्दयता ! सृष्टि-क्रम में कोई निर्ममता-निर्दयता नहीं होती।

अस्तित्व में मानव सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मानव आने से पूर्व उसकी सुख-सुविधा के समस्त साधन धरती पर वैसे ही उपलब्ध थे जैसे नवजात शिशु के लिए माता के स्तन में झरता दूध ! दूसरी बात यह कि मानव के लिए किसी दुःख या पीड़ा का प्रावधान अस्तित्व में नहीं है। मानव चूँकि मूलतः हर कर्म के लिए स्वतन्त्र है, और हर कर्म का फ़ल बीज-वृक्ष न्याय की तरह सुनिश्चित है; तो मानव जिसे दुःख कहता है वह उसीके कर्मों का फ़ल है। मृत्यु सुदीर्घ यात्रा का एक पड़ाव मात्र है; यात्री के सुविधार्थ एक आवश्यक विश्राम स्थल ! अपने मनोरंजनार्थ पक्षी को गोली से मार गिराना प्रकृति-विरुद्ध कार्य है; पाप है। मानव का सहज मरना नियम !

संदर्भ - संस्मरण शतक

## कथनी-करनी भेद

मिनख कयो – उळझ्योड़ी जेवड़ी, मैं तनैं सुळझा'र थारो कत्तो उपगार करूँ हूँ! जेवड़ी बोली – तूं किस्यो'क उपगारी है, जको म्हारै स्यूं छानूं कोनी। कोई और नै उळझाणै खातर मन्नै सुळझातो हुसी!

## शब्दार्थ

उळझ्योड़ी = उलझी हुई, जेवड़ी = डोरी,

## पाठार्थ

मनुष्य बोला – हे उलझी रस्सी, तुझे सुलझाकर मैं तुम पर कितना बड़ा उपकार कर रहा हूँ! रस्सी बोली – तू कैसा उपकारी है, यह मुझसे नहीं छुपा। किसी और को उलझाने के लिए मुझे सुलझाता होगा ?





## भावार्थ

मनुष्य की चालाकी से जड़-चेतन सभी इकाईयाँ दुःखी हैं, रस्सी तक जानती है कि उसे क्यों सुलझाया जा रहा है। अपने प्रिय-हित-लाभ से मनुष्य मानवता को लज्जित करने वाला कोई भी काम आसानी से कर लेता है, फ़िर भी अपनी प्रशंसा ही चाहता है ? किसी जड़ या चेतन इकाई को बन्धन में लाकर उससे अपना काम निकालने की नीयत से उलझी डोरों को श्रमपूर्वक सुलझाता है; और डोर पर अहसान थोपना नहीं भूलता कि उसपर कितना उपकार किया है ? अपनी खुशी और मन की आवश्यकता के अनुसार शादी-ब्याह-बच्चे आदि करते हुए जताता यही है जैसे परिजनों पर वह उपकार करता है; कि बच्चों को वह पाल-पोसकर बड़ा करता है; या युवाजन अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करने का दम्भ भरकर आज्ञाकारी-सेवाभावी होने का तमगा लगा लेते हैं ? वास्तव में बच्चे अपने परिजनों को अपनी शैशवी लीलाओं से हर्षित करते हुए कालक्रम से स्वयँ ही वयस्क होते हैं। शादी-ब्याह आदि के आयोजन समाज ने अपनी सुविधानुसार बना लिए, इनके पालन में किसी का किसी पर अहसान-उपकार जैसा समीकरण मनुष्य की स्वयँ के प्रति आत्म-श्लाघा वृत्ति से बनता है। किसी दूसरे को यह आत्म-प्रशंसा स्वीकार नहीं होती। हर मनुष्य अपनी प्रशंसा तो सुनना चाहता है, पर दूसरों की प्रशंसा से ईर्ष्या पैदा होती है। डोरी को सुलझाते हुए मनुष्य अपनी चालाकी को भूल जाता है, डोरी सही जगह स्मरण कराती है; यह मनुष्य पर डोरी का उपकार हुआ। अस्तित्व में परस्पर हर इकाई इसी प्रकार पूरक-उपयोगी बनती है; इसे समग्रता में जान लेना ही मनुष्य होने की सार्थकता है।

सन्दर्भ – मध्यस्थ दर्शन, श्राद्ध

## सपना और सच

चौमासै में डूंगर ऊपराऊँ उतरतो एक उछाँछळो नाळो बोल्यो – मैं एक छलाँग में समदर पूग ज्यास्यूं !
डूंगर रै पगाणैं पड़ी धूळ री तिसाई आँख्याँ नाळै कानी देखै ही'क कद नीचै उतरै'र कद सोसू !

## शब्दार्थ

चौमासा = वर्षा ऋतु के चार माह, उछाँछळो = चंचल, पगाणैं = पैरों में, तिसाई = प्यासी, सोसना = सोखना,

## पाठार्थ

वर्षा ऋतु में पहाड़ी की चोटी से उतरता एक उछलता-मचलता नाला बोला – मैं एक ही छलाँग में समन्दर तक पहुँच जाऊँगा । पहाड़ी के तले पड़ी धूल प्यासी आँखों से नाले की बाट जोह रही है कि कब वह नीचे उतरे और मैं उसे सोख लूँ !





## भावार्थ

जमीनी सच्चाई जाने बिना उत्साहातिरेक में आकाशीय सपने बुनना मनुष्य की वृत्ति है। इसी वृत्ति का प्रतीक है बरसातजन्य आवेग में उछलता मचलता नाला ! पहाड़ी की ऊँचाई और मिल गई, अर्थात 'बन्दर को बिच्छू काट गया' वाली बात हो गई। अब बन्दर की उछल-कूद में फ़िर भी कोई संभावना बनती है कि वह एक-दो छलाँग में पेड़ की ऊपर वाली डाल पर जा लटके, पर 'बरसाती नाले' की क्या बिसात ? उसके बड़बोलेपन पर सयाने हँस-मुस्कुरा सकते हैं; उनकी हँसी को दस गुना करने तैयार बैठी है तले पड़ी प्यासी धूल, जो नीचे उतरते ही नाले को उदरस्थ करने; सोखकर सुखा देने; अस्तित्वहीन बना देने को तैयार बैठी है। जमीनी सचाईयाँ नादान मनुष्य के दिवास्वप्नों को तोड़कर उसे होश में लाने का शुभ कार्य करने को सदैव प्रस्तुत ही हैं।

सन्दर्भ - श्राद्ध

## रुदन : शिशु और बादल का !

आभै रै सूनै आंगणें में एक नान्हीं सी'क बादळी गुडाळ्याँ चाल'र आ'गी। बादळी नै देख'र मोरिया नाचण नै लागग्या, सीपट्याँ मुंडो खोल दियो'र करसै री आँख्याँ में सुख रा सपनां जागग्या।
बादळी पूछ्यो – पून, अ सगळा म्हारै स्यूं के चावै है ? पून कयो – बावळी, अ सै थारै रोणै न अडीकै है।

## शब्दार्थ

आभै = आकाश के, गुडाळ्याँ = घुटनों से, सीपट्याँ = सीप, करसो = किसान

## पाठार्थ

गगन के सूने अँगने में एक नन्हीं सी बदली घुटनों के बल चलकर आ गई ! बादल को देखकर मोर नाचने लगे, सीपों ने अपना मुँह खोल दिया और किसान की आँखों में सुख के सपने जाग गए !





## भावार्थ

प्रकृति के रंग से सरोबार एक सुन्दर गळगचिया है यह ! राजस्थान की चिर प्यासी धरती का वासी सूने आकाश में किसी नन्हीं सी बदली के टुकड़े को देखकर बारिश की आशा में आनन्दित हो उठता है। बारिश का इन्तजार मनुष्य के अलावा सृष्टि की सभी इकाईयों को रहता है; मोर का नाचना, सीपियों का मुँह खोलना कि बरसती बूँदों को सीधा गटक सके और अपनी खेती के लिए किसान की उत्सुकता को चित्रित किया है कवि ने। मुख्य भाव पानी के साथ सभी के जुड़ाव का है, इतने बेशकीमती पानी का मनुष्य दुरुपयोग करे यह घोर आश्चर्य और दुंख का विषय है।

पानी की तरह यह जीवन भी बहुत मिन्नतों के बाद मानव-चोले सहित मिला है। एक नन्हीं सी बदली के प्रति बड़ी आशाएं पालने वाला मनुष्य अनन्तगुना मूल्यवान मानवतन का दुरुपयोग करे, तो जीवनसाथी पानी के दुरुपयोग की बात ही कौन करे ?

सन्दर्भ – आगामी ग्रन्थ "पानी रे पानी", श्राद्ध

## फ़रक

अमावस'र पून्यूँ में एक हथेळी जतै'क चान्द रो ही तो फ़रक है।

## शब्दार्थ

पून्यूँ = पूर्णिमा,

## पाठार्थ

अमावस्या और पूर्णिमा में एक हथेली जितने चान्द का ही तो अन्तर है।





## भावार्थ

दो नितान्त विपरीत छोर हैं अमावस्या और पूर्णिमा ! चन्द्रमा की सोलह कलाओं में प्रथम और अन्तिम कलाओं के प्रतीक हैं दोनों। अमावस्या घोर अंधकार की प्रतीक है जबकि पूर्णिमा स्वच्छ निर्मल पूर्ण प्रकाश की ! साहित्य मे दोनों के लिए नितान्त विपरीत शब्दावली और बिम्बों की स्वीकृत परम्परा है। इन दोनों में 'मात्र एक हथेली जितना अन्तर' देखना सिर्फ़ एक मासूम शिशु की नजरों से ही संभव है। मजा यह कि कोई पण्डित विद्वान भी इससे उलझ नहीं सकता, बस मुस्कुरा भर सकता है। शिशु की नजरें शंकाविहीन होती हैं, जो दिखता है उसे ही अन्तिम सत्य मानती है। कवीन्द्र रवीन्द्र रचित बाल मन की रचनाएं बरबस स्मरण में आ जाती है इस गळगचिए से खेलते हुए।

सन्दर्भ – नन्हीं सी उड़ान

## होशियार तैराक

पानड़ो झर'र पाणी में पड़ग्यो। डूब्यो कोनी तिरण लागग्यो। मन में फूलीज'र रूँख न कयो, मैं किस्यो'क हुँस्यार तिराक हूँ ? सिंझ्या पड़तां ही रूँख कयो – पानड़ा एकर अठीनै आईज्ये। पानड़ो रोंवतों सो बोल्यो – म्हारै सारै री बात कोनी।

## शब्दार्थ

तिरणा = तैरना, सिंझ्या = शाम, अठीनै = इधर, सारै री बात = वश की बात

## पाठार्थ

पत्ता झर कर पानी में गिर गया। डूबा नहीं, तैरने लगा। मन ही मन खुशी से फूलकर वृक्ष से बोला – मैं कितना होशियार तैराक हूँ ! शाम होते ही वृक्ष ने पुकारा – पत्ते, एकबार इधर तो आ जाओ। पत्ता रोते हुए बोला – मेरे वश की बात नहीं है आना।





## भावार्थ

जीवन में अधिकांश चीजें प्रकृति सहज गति में स्वतः संचालित हैं, इनमें किसी का श्रम या पुरुषार्थ न तो अपेक्षित है और न ही आवश्यक। तब भी कभी किसी मुर्गे को भ्रम हो ही जाता है कि वह बाँग न दे तो सवेरा ही न हो ? मनुष्य इस मुद्दे पर सर्वाधिक भ्रम में रहता है। डंके की चोट कहता भी कि –
कर्म किए बिना उदरपूर्ति नहीं हो सकती।
अमुक सफ़लता का सारा श्रेय मुझे है।
मैंने अमुक को जंग में हरा दिया।
सिर्फ़ मेरे ही दम पर सरकार चलती है ... ईत्यादि
वृक्ष से गिरे पत्ते के तैराक होने के भ्रम को चित्रित करके कवि ने इन्सानी फ़ितरत की झलक दी है।
चिरकाल से मानवमात्र की कामना इस भ्रम के घेरे से बाहर आने की है, अपना सही स्वरूप पाने की है। जन्म से ही मानव अपने आपको जानने के लिए उत्सुक लालायित होता है, उसीके लिए समस्त सांसारिक क्रिया-कलापों का आयोजन है। इस यात्रा को सुगम बनाने की दिशा में अनेक ऋषि-मुनि हर युग में वर्तमान होते हैं, उसी सतत श्रृँखला के एक अन्यतम दिव्य पुरुष हैं दार्शनिक कवि कन्हैयालाल सेठिया !

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ... संस्मरण शतक

## घाणी का बैल !

तेली रो नारो पूछ्यो – घाणी, आपां कताक कोस चालग्या ? घाणी बोली – ध्यावस राख, तिल नीवड़यां मजल आसी।

### शब्दार्थ

नारो=बैल, घाणी = तिल से तेल निकालने का स्थान, ध्यावस = धैर्य, नीवड़यां = खत्म होने पर, मजल = मंजिल, कोस = दूरी के माप की पुरानी इकाई

### पाठार्थ

तेली का बैल बोला – घाणी, हम लोग कितने कोस चल चुके हैं ? घाणी ने कहा – धैर्य रखो। तिल शेष होने पर ही मंजिल आएगी !





### भावार्थ

घाणी का बैल एक ही जगह गोल-गोल चक्कर लगाता है और उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है ताकि गोल-गोल घूमने से उसे चक्कर न आ जाए ! घाणी है तो स्थिर, किन्तु बैल उससे बन्धा यही समझता है कि घाणी भी उसके साथ साथ चल रही है ! लम्बी देर तक चुपचाप चलते बोर हुआ बैल अपनी सहयात्री घाणी से ही पूछ बैठता है कि हमने कितनी दूरी तय कर ली ? अब घाणी की आँख पर तो पट्टी नहीं है, वह तो सब जानती है, रोज का ही है यह चक्कर देखना ! जानती है कि बैल थक गया है, भूख भी लगी होगी अतः जानना चाहता है कि मंजिल और कितनी दूर है ? अब किसी बच्चे को बहलाने की तर्ज पर समझदार घाणी उसे धैर्यपूर्वक चलते रहने को फुसलाती है ! जानती है कि तिलों के शेष होने तक न बैल का छुटकारा है, न खुद उसका !

स्पष्ट है कि मनुष्य भी अनजाने घाणी का बैल बना हुआ है। आजीवन दौड़ता है, किन्तु मंजिल का पता नहीं ? कितना चले, कोई पैमाना नहीं ? और कितना चलना है, क्या श्रेयष्कर है; यह थमकर सोचने के किए फुर्सत नहीं; घाणी के चक्कर लगाते घाणी से ही पूछता है कि मंजिल कितनी दूर है ? घाणी अर्थात धर्म-सम्प्रदाय-मान्यताएं, परिवार-समाज-देश, शिक्षालय-मदरसकथाएं-मठादि; जिनके चारों ओर मानव आजीवन चक्कर लगाता है ! अब कौनसी घाणी चाहेगी कि उसे छोड़कर कोई बैल मुक्त हो जाए, मंजिल पा जाए ?

सन्दर्भ – उड़ान,उत्कर्ष और अन्त ...; नन्हीं सी उड़ान, संस्मरण शतक

## काजल

आगियो पूछ्यो – दिवला, थारी उजळी जोत में स्यूं ओ काळो काँई निकाळै है ? दिवलो बोल्यो – भाई, ओ म्हारै पापी मन रो पिसताओ है। आगियो कयो – जणां ही संसार आँख्याँ में घालै है के ?

## शब्दार्थ

आगियो = लौ, पिसताओ = पछतावा,

## पाठार्थ

लौ ने पूछा, - दीपक ! तुम्हारी उजली ज्योति से यह काला काला क्या निकल रहा है ? दीपक ने कहा – भैया, यह मेरे पापी मन का पछतावा है। लौ बोली – तभी तो सारा संसार इसे अपनी आँखों में बसाता है !





## भावार्थ

घी के दीपक से निकला धुंआ ही काजल के रूप में जमा लिया जाता है, इस प्रक्रिया को मानवीय मूल्यों से जोड़ा तो मनमोहक गळगचिया बन गया। उजली प्रकाश देती लौ से काले धुंए का निकलना और इस काले धुंए को ही शरीर के कोमलतम अंग आँखों का श्रृँगार बनाना एक रोचक पहेली सा लगता है। कवि ने इस पहेली के हल को उच्च मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ दिया है। धुंए की कालिमा को पश्चाताप जैसे संवेदनशील भाव से जोड़कर देख लिया तो 'साहित्य = हित सहित' का सूत्र सिद्ध हुआ।

सन्दर्भ - श्राद्ध

## धूप और छाँव

आसोज रो महीनूं। नान्हीं सी'क बादळी ओसरगी। एवड़ रै गुवाळियै रो अलगोजो गूंज उठ्यो – "रिमझिम रिमझिम मेवलो बरसै ......" अतै में अचाणचूको पून रो लैरो आयो'र बादळी उडगी। करड़ी तावड़ी निकळगी। खेत में निनाण करतो करसो बोल्यो – "आसोजां रा तप्या तावड़ा काचा लोहा ... "। मिनख री जीभ में कठैइ हाड कोनी।

## शब्दार्थ

आसोज = हिन्दी कालगणना का एक माह आश्विन, ओसरना = बरसना, एवड़ = भेड़-बकरियों का झुण्ड, अलगोजो = एक राजस्थानी लोक-वाद्य यन्त्र, मेवलो = मेह, बारिश, लैरो = लहर, करडी तावड़ी = तेज धूप, निनाण = खर-पतवार निकालना; कठैई = कहीं भी, हाड = हड्डी।

## पाठार्थ

आश्विन महीना है। एक छोटे से बादल ने बरसात कर दी। भेड़-बकरियाँ चराता ग्वाला मस्ती में अलगौजे की धुन पर गाने लगा – रिमझिम रिमझिम मेह बरसता... ...। इतने में अचानक पवन की एक लहर आई और बादल उड़ गया। कड़ी धूप निकल आई। खेत में खर-पतवार निकालता करता किसान बोला – "आसोजां रा तप्या तावड़ा काचा लोहा ... ...। सच है कि मनुष्य की जीभ में कहीं कोइ हड्डी नहीं है!





## भावार्थ

पल पल बदलती परिस्थिति के साथ क्षणभर में जुबान का पलटना देखकर कवि का संवेदनशील मन प्रश्न करता है! फ़िर स्वयँ ही प्रश्न का उत्तर भी खोज लेता है। माटी से जुड़ा मानस प्रकृति नटिनी की सूक्ष्म लीलाओं का अध्ययन करता है और छोटे-छोटे सहज प्रतीक मिलाकर जीवन के गहरे रहस्यों को समाहित करता हुआ लिख देता है।

इस गळगचिए में दो लोकगीतों का सन्दर्भ है, दोनों ही स्वयँ सेठियाजी की रचनाएं हैं। सन्दर्भ में स्वयँ को रखना प्रामाणिकता का प्रतीक है न कि आत्मश्लाघा का ! कबीर की एक साखी स्मरण आती है, कहा है – "तुम कहते कागद की लेखी, मैं कहता आँखों की देखी !" कागज पर उतरा शब्द प्रमाण नहीं होता, बल्कि सत्य को स्वयँ जीने वाला मानव ही प्रमाण होता है। परम्परा में आर्षग्रन्थों को प्रमाण कहा जाता है, उस मान्यता पर पुनर्विचार आवश्यक है।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ...

## मतलबी तालाब

बिरखा आई। छोटा छोटा नाळा'र खाळा पाणी ल्या ल्या'र तळाव नै भर दियो। दूसरै ही दिन कड़ी तावड़ो निकळ्यो, नाळा खाळा रा कंठ सूकग्या। नाळा कयो – तळाव म्हे काल पाणी ल्याया जकै में स्यूं थोड़ो पाणी कंठ आला करणी वास्तै म्हानै पाछो दे। तळाव चिड़'र बोल्यो – जा, जा, छोटै मूंडै बडी बात नहीं सोभै। बापड़ा नाळा तिरस्या धूळ फांकणी सरू कर दी। फेर बिरखा आई, पण नाळा रा कंठ धूळ सूं भरग्या हा, बी मतलबी तळाव ताईं पाणी कुण ल्यातो हो ?

### शब्दार्थ

बिरखा = बरसात, कंठ आला करना = गला तर करना,

### पाठार्थ

वर्षा हुई। छोटे-छोटे नाले-खालों ने पानी ला ला कर तालाब को भर दिया। दूसरे ही दिन कड़ी धूप निकली, नाले-खाले सूख गए। नाले बोले – तालाब, हमने कल जो पानी लाकर दिया था उसमें से थोड़ा पानी हमें गला तर करने के लिए लौटा दो। तालाब ने चिढ़कर कहा – जा जा, छोटे मुँह पर बड़ी बात शोभा नहीं देती। बिचारे प्यासे नालों ने धूल फांकना शुरु कर दिया। बरसात फिर आई, किन्तु अब बिचारे नालों का गला तो धूल से भर गया था; तालाब के लिए कौन लाता पानी ?





### भावार्थ

[illegible] सभी भी तो सम्भावनी है मिलता। तालाब-नाले का संवाद यही संकेत दे रहा है। इसमें दो भिन्न जीवन-दर्शनों का संकेत स्पष्ट है। एक कल की फिक्र छोड़कर जीना और दूसरी कल को आज मानकर उसकी तात्विक व्यवस्था में स्वयं को नियोजित रखना। यह सुनने-सोचने में बड़ा रोमांटिक और आकर्षक लगता है कि कल की फिक्र छोड़कर मस्ती से आज जी लो। इस शैली में धरती के समस्त प्राकृतिक संसाधनों का निर्मम दोहन-शोषण-उत्पीड़न आदि चल रहा है। स्वयं को छोड़कर किसी अन्य की सत्ता को नहीं स्वीकारता आदमी। बल्कि ये सभी इकाइयाँ अपने अस्तित्व को संकट में पाती हैं। सभी यह जानते हैं जीवन सबके साथ साथ है तभी सुविधापूर्वक जिया जा सकता है, अन्यथा नहीं। इस जीवनशैली का आदर्श है 'जीयो और जीने दो'। पहले स्वयं जीने के संघर्ष में ही आदमी पूरा नहीं पड़ता, तो 'जीने दो' के झंझट में कौन पड़ेगा ? सबको मानकर स्वयं जीने की मूर्खता चल रही है।

दूसरी जीवनशैली का आदर्श 'जीने दो और जियो' बनता है। 'मुझसे पहले तुम, मुझसे ज्यादा जरूरी तुम, मेरे काम से पहले तुम्हारा काम, और तुम्हारा सुख-सुविधा का चक्र पूरा होने तक मैं उसी में स्वयं को खपाने को सहर्ष तैयार' सुनने में भले ही हास्यास्पद लगे, किन्तु अब जीने या बचने का यही सूत्र उपयोगी है। इसे जीया जाना चाहिए।

## खींचतान का फ़ल

बीज जमीन नै ध्यावै'र रूँख आभै नै, ई खींचताण में फळ रा धणी दूजा ही बण ज्यावै।

## शब्दार्थ

ध्यावै = आराधना, धणी = मालिक

## पाठार्थ

बीज जमीन की आराधना में लगा है और पेड़ का ध्यान गगन की ओर है; इस खींचतान में फ़ल का स्वामी कोई और ही हो जाता है।





## भावार्थ

सामान्य सी बात है कि बीज अपनी जड़ों को जमीन के भीतर अत्यन्त गहरे फ़ैलाता है, वहीं से जीवनी शक्ति संचय करता है; जब कि पेड़ ऊपर आकाश की ऊँचाईयों को मापने की लालसा में बढ़ता है। एक ही तत्व के दो भाग दो विपरीत दिशा में अपनी-अपनी सार्थकता तलाश कर रहे हैं। दोनों की गति और त्वरा समान है, तीव्र है; इस त्वरा में अपने अस्तित्व के प्रति उपेक्षा हो जाना स्वाभाविक है। उनको पता ही नहीं चलता कि दोनों के संचित फल कोई आदमजात काट के ले जा रहा है! फल अर्थात जीवन स्वत्व, नवनीत या अन्तिम प्राप्ति! वास्तव में पेड़ की सार्थकता उसका फल ही है। जड़ों का नीचे फ़ैलाव हो या तने का ऊपर; दोनों तरह से प्रयोजन तो मीठा-रसीला फल पैदा करना ही है, जो पुनः नए बीज का उत्पादक बने और जीवन-चक्र पूरा होकर नई यात्रा कर सके!

जैसे पेड़ समग्रता में अपने प्रयोजन से अनभिज्ञ और अपने प्राप्त फलों से निरपेक्ष है, वैसी ही हालत आदमी की भी है। अन्दर-बाहर दोनों दिशाओं में एकसाथ पूरी त्वरा से संघर्षरत मानव यह जान ही नहीं पाता कि वह क्यों है, क्या है? उसके होने का प्रयोजन क्या है? क्यों है इतनी भागमभाग? पाना क्या है? मिलता क्या है? ये प्रश्न उसे सदा परेशान करते हैं, सम्भवतः इन प्रश्नों से पीठ करके ही लगातार भाग रहा है मानव!

सन्दर्भ - पाश्चात्य दर्शन, उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ... का पारम्परिक चित्र,

## परस्परता

पानड़ा कयो – डाळां, म्हे नहीं हूँता तो थे कत्ती अपरोगी लागती ?
फूल कयो – पानड़ाँ, म्हे नहीं हूँता तो थे कत्ता अडोळा लागता ?
फ़ळ कयो – फूलाँ, म्हे नहीं हूँता तो थाँरो जलम ही अकारथ जातो ?
फूल में छिप'र बैठ्यो बीज सगळां री बात सुण'र बोल्यो – भोळां, मैं नहीं हूँतो तो थे कोई कोनी हूँता।

## शब्दार्थ

अपरोगी = अटपटी, अडोळा = रुखे-सूखे, अकारथ = व्यर्थ,

## पाठार्थ

पत्ते बोले – डालियों, यदि हम न होते तो तुम कितनी अटपटी असुन्दर लगती ?
फूल बोला – पत्तों, अगर हम न होते तो तुम कितने सूने-सूने लगते ?
फ़ल बोले – फूलों, यदि हम न होते तो तुम्हारा जीवन ही व्यर्थ था।
फ़ल में छिपकर बैठा बीज सबकी बात सुनकर बोला – भोले-भाले मित्रों, यदि मैं न होता तो तुममें से कोई भी न होता !





## भावार्थ

पत्ते, फूल, फ़ल और बीज सभी का अपना-अपना महत्व है, किन्तु मुख्य बात यह है कि सब साथ साथ हैं तभी सबकी सार्थकता है। हर इकाई विशेष है, किन्तु अपनी विशेषता के अहँकार में जब दूसरे को कमतर आंक लिया जाता है, तो प्रतिक्रिया, विरोध, विद्रोह और संघर्ष की दिशा में बात बढ जाती है।
अब यह सँवाद मनुष्यों के बीच नहीं होता ! मनुष्य के लिए संवाद; प्रतीक बनाया मनुष्येतर इकाइयों को ? सीधा कहा जाता तो कवि पर लाखों प्रश्न खड़े कर दिए जाते, क्योंकि मनुष्य सीधा सुनना पसन्द नहीं करता। न सीधा सुनता है, न सीधा स्वीकारता है ! जैसे किसी को सीधा कह दिया जाए कि तुम अहँकारी हो, तो उसे गाली लगेगी। यह 'गाली' लगना उसके अहँकार की घोषणा है, तब भी वह गुस्से से लाल-पीला हो जाएगा, मरने-मारने पर उतारु हो जाएगा।
इसके उलट ओशो जैसा कोई स्वयँ को भगवान कह दे, तब भी विरोध ? जबकि यह सभी कह देते हैं कि इस चराचर जगत में भगवान के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं, तो सब स्वीकार लेंगे ?
औपनिषदिक मन्त्र है – 'अहँ ब्रह्मास्मि' ! पहली बार जिस ऋषि ने कहा, उसपर अहँकारी और झूठा होने का आरोप लगा , तो उसने हँसकर जोड़ा "तत त्वमसि" तो दो के सिवा बाकी सबकी भौहें टेढी हुई। ऋषि को आगे कहना ही पड़ा – "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ! तब जाकर पीछा छोड़ा नासमझों ने !
पत्ते, फूल, फ़ल और बीज ही ठीक हैं, इनसे सुन्दर खिलौना 'गळगचिया' बन जाता है ! अन्यथा अब कोई समझदार तो गळगचियों के साथ खेलने से रहा !

सन्दर्भ – मध्यस्थ दर्शन; उद्भव, उत्कर्ष और अन्त; संस्मरण शतक

## ठीकरी

पिणघट पराँ पड़ी ठीकरी पूछ्यो – घड़ा, मनै ओळखै है के ? बीच में ही पिणियारी अणख'र बोली – पैली मूंडो छाणांऊँ रगड़'र आ। अतै में ही ठोकर लागी'र घड़ो फूटग्यो, ठीकरी ठीकर्यां स्यूं जा मिली।

## शब्दार्थ

पिणघट = पनघट; ठीकरी = फूटे घड़े का टुकड़ा; ओळखना = पहचानना; अणखना = गुस्सा दिखाना, छाणां = गोबर का सूखा कण्डा, जलावन;

## पाठार्थ

पनघट पर पड़ी ठीकरी ने पूछा – घड़े, मुझे पहचानते हो क्या ? बीच में ही पनिहारिन गुस्सा दिखाते हुए बोली – पहले अपना मुँह गोबर से धोकर आओ। इतने में ही उसे ठोकर लगी और घड़ा फूट गया। ठीकरी ठीकरों से जा मिली।





## भावार्थ

अपना आपा पूरी तरह जानकर ही दूसरों को उनकी औकात बताने या उनकी भूलें देखने का प्रयत्न करना उचित है। फूटे घड़े की ठीकरी ने घड़े के साथ अपने सम्बन्ध को पुनर्स्मरण किया कि पनिहारिन का अहँ जाग गया। 'यह अहँ विस्तारित होकर सिर पर चढे घड़े तक फ़ैल गया। 'यह पाँवों की ठीकरी मेरे सिर पर शोभित घड़े के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ रही है ? इसकी इतनी औकात नहीं कि वह घड़े की तरफ नजर भी डाल सके...' इसी मद में उसे ठोकर लगी और घड़ा फूट गया ! अब फूटा घड़ा तो ठीकरी ही कहलाएगा ! जुड़ गया सम्बन्ध, जो पहले से जुड़ा ही था। सम्बन्ध नए सिरे से जोड़ना नहीं है, वह तो सदा से बना ही है, बस इस सत्य को जान लेना है कि सृष्टि का कण-कण परस्पर एक है, सह-अस्तित्व के तार से जुड़ा है। इसे पहचानने में बाधा है मनुष्य का अहँकार, जो पनिहारिन के माध्यम से किसी को भी दिखाई दे जाता है। अब पनिहारिन पर तो मनुष्य हँस लेता है, उसका अहँकार इसी प्रकार ठोकर लगकर टूटना चाहिए; किन्तु यही समीकरण अपने साथ नहीं दिखाई देता ? यह गळगचिया आदमी के होने के ढँग पर एक मीठा व्यँग है।

## ऊँट के लिए गिरवाण

नानकी री मा कयो – आज आखातीज है, नानकी रो नाक बिन्दाद्यो, सोनै री बाळी पिरास्यूं। नानकी रो दादो सुण'र बोल्यो – भली याद दिराई, टोडियै रो नाक ही बिन्दावणूँ हो। चान्दी री गिरवाणाँ करायोड़ी पड़ी है। थोड़ी ताळ पछै ही नानकी सुनार कनैं बैठी कान बिंधवावै ही। सारै ऊभी नानकी री मा कयो – पीड़ हुवै तो रोईजे मत, तनैं सोनै री बाळी पिरा देस्यूँ! कनैं ही बाखळ में गोडा बाँध'र पटक्योड़ो टोडियो नाक बिंधावतो पीड़ स्यूँ कोजो अरडावै हो। सारै ऊभी सांढणी (टोडियै री मा) आ कही जकी तो देखी'क तनै चान्दी री गिरवाणाँ पिरासी, उल्टी टोडियै स्यूं ही घणी अरडाण लागगी!

### शब्दार्थ

नानकी = राजस्थानी गावों में छोटी बेटी को इसी तरह पुकारते हैं; बाळी = नाक छिदा कर पहनी जाने वाला गहना; टोडियो = बच्चा ऊँट; गिरवाण ऊँट के नाक का आभूषण; बाखळ = दालान; कोजो अरडावै = बुरी तरह रोना, ऊँची आवाज में दर्द व्यक्त करना;

### पाठार्थ

नानकी की मां ने कहा – आज अक्षय तृतीया है, नानकी का नाक छिदवाना है, सोने की बाली पहनाऊँगी। नानकी के दादाजी ने यह सुनकर कहा – अच्छी याद दिलाई, ऊँट-बच्चे का भी नाक छिदवाना है, चाँदी की गिरवाण बनवाई हुई रखी है। थोड़ी देर बाद ही नानकी सोनार के पास बैठी नाक छिदवा रही है। पास खड़ी नानकी की मां ने कहा – दर्द होने से रोना मत, तुझे सोने की बाली पहनाऊँगी। पास ही दालान में घुटने बाँधकर गिराया टोडिया नाक बिंदवाते हुए दर्द से बिलबिलाता ऊँचे स्वर में रो रहा था। पास ही खड़ी ऊँट की मां का यह कहना तो दूर कि तुझे चाँदी की गिरवाण मिलेगी, उल्टा उससे भी ऊँची आवाज में चिल्लाने लगी।





### भावार्थ

बहुरंगी गळगचिया है यह। साफ़ साफ़ चमकते कुछ रंग इस प्रकार हैं –

- सोने- चाँदी का लालच इन्सानों को रहता है, पशु इस मूर्खता में नहीं पड़ते।
- लोभ का चाबुक इन्सान पर काम करता है, जबकि पशु पर सजा का भय! (दो बीघा जमीन का रिक्शा चालक बलराज साहनी)
- राजस्थान में अक्षय तृतीया सिर्फ़ बाल-विवाह का मुहुर्त नहीं बल्कि लोकजीवन के अनेक कार्य इस दिन योजना व आयोजनपूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं।
- पशु का सामूहिक रुदन प्राकृतिक है, इन्सान का दर्द में भी न रोना बनावटी।

राजस्थान में घरेलू पशु घर के सदस्य जैसे ही गिने जाते हैं। मां ने नानकी के लिए सोने की बाली बनवा के रखी थी तो दादाजी ने शिशु-ऊँट के लिए चाँदी की गिरवाण!

जैसे नानकी की नाक छिदाई उत्सव है, वैसे ही टोडिए को गिरवाण पहनाना भी उत्सव है। रेगिस्तान के विस्तार जैसा ही उदार है राजस्थानी मन!

राजस्थानी संवेदना का फ़ैलाव पशु-पक्षी-वनस्पति से नीचे पदार्थावस्था की इकाईयों तक जाता है। 'सोने की बाली' जहाँ इस परिवार की सम्पन्नता का प्रतीक है वहीं माँ-बेटी के बीच प्रेम-सेतु का प्रतीक भी! 'प्रेम' अपने से जुड़ी हर वस्तु को प्राणवान बनाता है!

यह सांस्कृतिक विवेचन लगभग हर गळगचिए के साथ देखा जा सकता है। ये रंग देखने की दृष्टि होना अपेक्षित है। सेठियाजी का साहित्य समग्रता में ऐसी दृष्टि जगाता है।

सन्दर्भ – आनन्दिनी मीरा, फ़िल्म- दो बीघा जमीन, संस्मरण शतक

## दिया और अंधेरा

हाथी सो अंधेरो कीड़ी सी'क दिवळै री लौ नैं कोनी चींथ सकै।

## शब्दार्थ

कीड़ी सी'क = चींटी जितना; चींथना = रौंदना, दबोचना;

## पाठार्थ

हाथी सा विराट अँधियारा चींटी जैसे छोटे दीपक की लौ को नहीं दबोच सकता।





## भावार्थ

राजस्थानी में एक लोकोक्ति चलती है, हिन्दी-शब्दान्तरण कुछ इस प्रकार है – "बड़ा देख के डरना नहीं, छोटा जान के भिड़ना नहीं !" अंधेरा कितना भी विकराल और फ़ैला हुआ हो, दीपक की नन्हीं सी लौ के सामने नहीं टिक सकता। अपनी क्षमताभर दूरी तक रोशनी फ़ैलाता है, और काफ़ी दूर तक जलता दीपक दिखाई देता है; अर्थात बहुत विराट इलाके के जनों को अपनी उपस्थिति से आश्वस्त करता है। दीपक होना न सिर्फ़ साहित्य में बल्कि व्यवहार-जगत में भी बड़ी बात है।

## मोती, नारियल, तिल और तुम

काळजा मोत्याँ रा ही बिंधीजै; सिर नारैळाँ रा ही फुड़ीजै, डील तिलाँ रा ही घाणी में पेलीजै, फ़ेर तूँ आँ स्यूँ किस्यो न्याऊ है जको सोरै सांसाँ ही छूट ज्यासी।

### शब्दार्थ

काळजा = सीना, कलेजा; नारेळ = नारियल; न्याऊ = कमतर;

### पाठार्थ

कलेजे मोतियों के ही छिदे जाते हैं, सिर नारियल का ही फ़ोड़ा जाता है, तिलों के शरीर ही घाणी में पेरे जाते हैं; फ़िर तू कौनसा इनसे कमतर है जो सहज ही छूट जाएगा ?





### भावार्थ

वेदना को महिमामण्डित किया है कवि ने। सारे प्रतीक आम जनजीवन से उठाए हैं। मोतियों की माला बनाने की कला के लिए बीकानेर प्रसिद्ध है, और रचनाकाल में सुजानगढ बीकानेर रियासत में आता था। सुजानगढ में ही सालासर के बालाजी मन्दिर में नारियल खूब चढाए जाते हैं, और तब तेल की घाणियां तो निकट मोहल्ले में ही परचून की दूकान की तरह हुआ करती थीं। संवेदनशील होने से कवि जनसामान्य की वेदना से जुड़ा ही हुआ था। तो इन सबको मिलाकर बन गया साहित्यिक गळगचिया !

मनुष्य के दिल पर कोई भावनात्मक आघात लगता है, तो कलेजा चिरे जाने की सी वेदना होती है; हालाँकि प्रत्यक्षतः मोती की तरह कुछ बिंधा या चीरा नहीं गया ? अपनों के साथ हुआ झगड़ा हर मनुष्य को सिर फूटने की सी वेदना देता है; भले ही नारियल की तरह कुछ फ़ोड़ा न गया हो ? उदरपूर्ति के लिए मजदूर को और खेत में किसान को भरपूर पसीना बहाना होता है; तिल से तेल निकाले जाने की उपमा यहीं बनती है !

मोती बिंधा जाकर ही गले का हार बनता है ! नारियल की सार्थकता देवता की वेदी पर फूटने में ही है ! और तिल का प्रयोजन घाणी पर पेरे जाकर तेल बनने में ही है ! मानव अपनी प्रयोजनीयता के अनुरुप तप कर ले, यही उसके होने की सार्थकता है।

सन्दर्भ - नन्हीं सी उड़ान

## आँख में तिनका

जगत रो दोष देखताँ आँख अघाईजी ही कोनी। एक दिन एक छोटो सो'क रावळियो आँख नै देखण नै आँख में बड़ग्यो। आँख रीस स्यूँ लाल हु'गी, पण रावळियो क्याँरो डरै हो ? आखर में आँख रोवण लागगी जद लार छोडी !

### शब्दार्थ

अघाईजना = तृप्त होना, बेजार होना; रावळियो = तिनका; रीस = गुस्सा;

### पाठार्थ

दुनियाँ के दोष देखने में आँख कभी तृप्त हुई न बेजार। एक दिन एक छोटा सा तिनका आँख का निरीक्षण करने आँख के अन्दर घुस गया। गुस्से से आँख लाल हो गई, पर तिनका भला क्या डरता ? आखिर में आँख रोने लगी, तब जाकर तिनके से पीछा छूटा।





### भावार्थ

आम बात है, दुनियाँ भर में जिस व्यक्ति से मिलो उसी में दोष-कमी दिखाई दे जाती है। व्यक्ति अपने दोष नहीं देख पाता ? इसी की जाँच करने के बहाने कोई तिनका आँख में घुस जाए, तो सबसे पहले किसी अन्य की तरफ़ ध्यान जाना बन्द होता है; दोष देखने या कहने की तो बात कोसों दूर रह जाती है। दूसरी बात यह जरुरी हो जाती है कि यह बिन बुलाया मेहमान जल्दी विदा हो। दोष रूप में छोटा सा तिनका भी कोई रखना नहीं चाहेगा। मेहमान की खतिरदारी घड़ी दो घड़ी भी नहीं कर पाएगा। 'दोष' है मुझमें, तत्काल इससे पीछा छूटना जरुरी हो जाता है। अबतक अपने में कोई दोष दिखाई ही न दिया था तो क्या करते ? अब दिखाई दिया है तो बैचेनी हो गई ! उस दोष पर गुस्सा भी इतना ज्यादा कि आँखें लाल हो जाती हैं ! किन्तु खूब कहा है कवि ने कि दोष पर गुस्सा करना, उसे ताव-ताप दिखाना या पश्चाताप करने का कोई मोल नहीं है, इससे दोष दूर नहीं हुआ करते। अपनी इस प्रारम्भिक रचना में कवि की दार्शनिक पहचान का झलकना 'पूत के पांव पालने में पहचान में आ जाते हैं' कहावत को सिद्ध करता है। दोष के लिए तो रोना ही होगा ! रोने पर भी दोष दूर हो ही जाएगा, इसकी गारण्टी नहीं है, पर रोना तो पड़ेगा ही। वाह रे वाह गळगचिए, क्या वजनी बात बता दी यार !

## बूँद और समुद्र

काँटै री नोक पराँ टिक्योड़ी नान्हीं सी'क ओस री बूँद तो मैण री हुवै ज्यूँ जम'र ही बैठगी पण भौम री सुख सैज्याँ पर पोढ्योड़ो समदरियो तो रात'र दिन कसमसतो ही रवै।

### शब्दार्थ

मैण = मोम; सुखसैज्याँ = सुख शैया; पोढना = सोना

### पाठार्थ

काँटे की नोक पर टिकी नन्हीं सी ओस की बूँद तो मोम की तरह जमकर बैठी है, पर भूमि की सुख शैया पर सोया समुद्र तो रातदिन कसमसाता ही रहता है!





### भावार्थ

ओस की बूँद और महासमुद्र; एक ही परिवार की दो इकाईयाँ दो विपरीत लक्षण दिखाती हैं इस गळगचिए में! ओस की बूँद काँटे की नोक जितने स्थान पर स्थिर टिकी है, जबकि समूची धरती को सुख शैया बनाकर लेटा समुद्र क्षणभर भी स्थिर नहीं होता। इस दर्पण में कुछ और भी बिम्ब नजर आते हैं- जो जितना बड़ा, वह उतना ही अशान्त! नाम, पद, पैसा, यश आदि आयामों में 'बड़े आदमियों' को देखकर ओस और समुद्र का यह अन्तर सार्थक दिखता है।

नींद किसी बड़ी जगह या आरामदायक शैया की मोहताज नहीं; ओस की नर्म नाजुक बूँद काँटे की नुकीली जगह पर स्थिर सो लेती है; पूरी धरती को सुखशैया बनाकर लेटा महाकाय समुद्र करवटें बदलता रहता है।

एक परिवार का होने से दो सदस्यों की प्रकृति में समानता होगी, इसकी गारण्टी नहीं है। रावण और विभीषण सगे भाई थे, कौरव-पाण्डव एक ही कुरु वंश की शाखाएं थीं; किन्तु विपरीत ध्रुवों पर खड़े नजर आते हैं। मानव जीवन के कई गहरे लक्षण दिखाती हैं कविवर सेठियाजी की रचनाएं।

## चाँदनी और मनुष्य का सत

झूंपड़ी रो आडो खोल्यो'र बारै ऊभी च्यानणी बिन्याँ पूछ्याँ ही चटकैण माँय बड़गी। माचै पराँ सूती, आँगणै में पसरी'र कपड़ा ही कोनी खोलण दिया'क रूँ रूँ स्यूं लटूमगी। मैं कयो, च्यानणी ! रात री बेळ्याँ में, सूनै घर में, परायै मोट्यार कनै नहीं रहणूं; जा चली जा; चाँद काँई समझ सी ? पण च्यानणी टस स्यूँ मस को हुई नीं। अचाणचूको एक बादळियो आयो'र चान्द रो मूंडो ढकीजग्यो, सागै ही च्यानणी सपकै'र जाँती रही। बादळियो पाँवड़ो आगै भर्यो'र चान्द निकळग्यो, च्यानणी पाछी आगी। मैं पूछ्यो – च्यानणी कुनैं गई ही ? च्यानणी बोली, भोळिया, मैं तो चान्द रै सागै ही रहूँ हूँ। अबै ही कोनी समझ्यो के ? मैं तो मिनखाँ रो सत टंटोळती फ़िरूँ हूँ।

### शब्दार्थ

आडो = दरवाजा; बारै ऊभी = बाहर खड़ी; चटकैण = फ़ुर्ती से; सपकै'र = साँप की गति से; टंटोळती = खोजती;

### पाठार्थ

झोपड़ी का दरवाजा खोलते ही बाहर खड़ी चाँदनी क्षणांश में ही अन्दर आ गई ! बिस्तर पर सोई, आँगन में पसर गई, कपड़े ही न खोलने दिए और रोम रोम से लिपट गई। मैंने कहा – चाँदनी, रात के समय, सूने घर में, पराये मर्द के साथ नहीं रहना चाहिए; जा चली जा; चाँदक्या सोचेगा ? मगर चाँदनी तस से मस न हुई। अचानक एक बदली आई और चाँद का मुँह ढक गया; साथ ही चाँदनी जाती रही। बदली ने जरा पाँव आगे बढाया और चाँद निकल आया, चाँदनी वापस आ गई। मैंने पूछा – कहाँ गई थी चाँदनी ? चाँदनी बोली – बावले, मैं तो चाँद के साथ ही रहती हूँ। अब भी नहीं समझे क्या ? मैं तो मनुष्यों का सत टटोलती फ़िरती हूँ।





### भावार्थ

प्रकृति की व्यवस्था में मानव के लिए अच्छा-बुरा, प्रेय-श्रेय सबकुछ सर्वदा उपलब्ध है; कोई बाधा अटकाव नहीं है। मनुष्य उनका उपभोग अर्थ में दुरुपयोग या सदुपयोग करने के लिए सर्वथा स्वतन्त्र है। दुरुपयोग होने पर कड़वा परिणाम और सदुपयोग होने पर मीठा परिणाम सृष्टि रचना के नियमान्तर्गत निश्चित मिलता है। चान्द, चान्दनी, मनुष्य का मन आदि सब प्रतीक बनाकर कवि ने मानव मात्र के लिए कुछ नैतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की ओर इशारा किया है। इसी बिन्दु पर साहित्य की एक विशेषता – "समाज का हित साधन" सिद्ध होता है। सेठियाजी का समग्र साहित्य इस कसौटी पर खरा है। इसी कारण उनके शरीर न रहने पर भी और किसी प्रकार की बाजार व्यवस्था का अंग न होकर भी उनकी रचनाएं अधिकाधिक आदर पाती हैं।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त

## घड़ा बनाम छलनी

कुम्हार घड़ो ल्यायो । लेवाळ ठोक बजा'र, एक आँख मींच'र माँय स्यूँ देख'र बोल्यो – काम को कोनी, पीन्दै में एक मीयूँ सो'क बेजको है। लुहार चालणी ले'र आयो। गाहक उलट पुलट'र देख'र बोल्यो – सांतरी है, बेजका मोकळा है, चीज सोरी छणसी।

### शब्दार्थ

लेवाळ = खरीद्दार; पीन्दै = तले में; मीयूँ सो'क बेजको = छोटा सा छेद; चालणी = छलनी; गाहक = ग्राहक; सांतरी = उपयोगी, अच्छी; मोकळा = काफ़ी, पर्याप्त, ज्यादा;

### पाठार्थ

कुम्भकार घड़ा लाया । खरीदार ने ठोक-बजाकर, एक आँख बन्द करके अन्दर से देखकर बोला – 'काम का नहीं है, तले में एक छोटा सा छेद है।' लोहार छलनी लेकर आया । ग्राहक ने उलट पुलट कर देखा और बोला – अच्छी है, काफ़ी छेद हैं, वस्तु आसानी से छनेगी।





### भावार्थ

घड़े में छिद्र है तो वह किसी काम का नहीं, जबकि छलनी में जितने ज्यादा छिद्र हों, उतना अच्छा; इस समीकरण को सामने रखकर कवि वर्तमान मानव की सोच में बढती नादानियों की तरफ़ ध्यानाकर्षण कर रहे हैं; मानवसमूहों में स्वीकृत कुछ मान्यताओं को नई कसौटी प्रदान कर रहे हैं । यह कसौटी प्रयोजनीयता की है; उपयोगिता और परस्पर पूरकता की है। वस्तु के होने की सार्थकता यह है कि वह अपने प्रयोजन को पूरा करती हो। घड़े का प्रयोजन पानी को अपने भीतर रखकर शीतल बनाने में है, इसलिए उसमें छिद्र नहीं होना चाहिए, जबकि छलनी का प्रयोजन उसमें अधिकतम छिद्रों से पूरा होता है।

मानवाधिकार के नाम पर देशद्रोही, समाजकंटक और हत्यारे अपराधियों के पक्ष में खड़े होने से पूर्व मानवाधिकार स्वयँ अपनी प्रयोजनीयता और ऐसे समूहों की सोच-कथनी-करनी को समग्र हित की कसौटी पर जाँच ले तो न्यायालयों का सिरदर्द आधा हो जाए।

गाँव-गाँव और घर-घर में शौचालय और बिजली पहुँचाने की घोषणा करने और उत्साहपूर्वक अभियान चलाने से पूर्व क्या पानी की निरन्तर घटती उपलब्धता और ऊर्जा की बढती खपत से होने वाले पर्यावरणीय संकट को नहीं देखना है ? अन्यथा दो-तीन दशक पूर्व ही देश की बढती आबादी को रोकने के लिए कन्या भ्रूणहत्या को सरकारी प्रोत्साहन दिया गया, आज वही बड़ा अपराध बना दिया ? दोनों ही समस्या के तात्कालिक उपचार हैं, जो ऐलोपैथी की तरह रोग को ठीक करने की बजाय समाज को नई नई बीमारियों से ग्रसित किए जा रहे हैं।

नारी-जागृति अभियान में उत्साहपूर्वक जूलूस नारे झण्डे उठाने वाले परिवार और समाज में नारी की भूमिका, उपयोगिता के आधार पर समीक्षा मूल्याँकन तो करेंगे ? अन्यथा जैसे उत्साह में 'दहेज' जैसी प्रेमाधारित प्यारी रीत को अपराध ठहराने के बावजूद वह बाजे-गाजे के साथ जारी है; जबकि पिता की

सम्पत्ति पर बेटी का हिस्सा कानून ने करोड़ों भाई-बहनों को एक-दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी और दुश्मन बना दिया है, वैसा ही विभाजनकारी कार्य बार-बार दोहराया जाएगा।

एक तरफ मूर्खतापूर्ण नारी-पुरुष समानता के सिद्धान्त पर सह-शिक्षा, तो साथ ही सेंसेक्स आधारित अर्थनीति के सम्बल शराब-नशा-द्यूत को राजनैतिक-प्रशासनिक प्रोत्साहन ने समाज के सभी नैतिक मूल्यों को तार-तार कर दिया है। अब योग-आयुर्वेद की आड़ में वैदिक मानदण्डों को प्रचारित करने से बहुधर्मी समाज और परस्पर विरोधी मान्यताओं को पोषण देती भिन्न सांस्कृतिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले देश में जैसे संघर्षों के लिए व्यापक हथियार और हिंसक मन तैयार कर दिए हैं राजनीतिज्ञों और धार्मिक नेताओं ने। प्रजा-पालन-संरक्षण के प्रयोजन से विपरीत कार्यों की पृष्ठभूमि पुनः तैयार है वैश्विक मानचित्र पर।

अब देखना है कि इस सौरमण्डल का सबसे खूबसूरत गोला यह धरती अपना अन्त किस दिशा से देखती है - पर्यावरणीय असंतुलन से, पानी की कमी से, परमाणु विस्फोटों से, धर्मयुद्धों और जेहादों से, अथवा घर-घर में नारी-पुरुषों के परस्पर बढ़ते संघर्षों से ? पशु और वनस्पति तो फिर भी अपने अपने प्रयोजन के आधार पर ही काम करते हैं, क्या मानव अपने बारे में यह कह सकता है ?

सन्दर्भ- पानी रे पानी, उद्गम, उत्कर्ष और अन्त





## कृतज्ञता

परमपिता से खूब खेला है, इस खेल के प्रति कृतज्ञ है साधक।

मूल रचनाकार और उनसे जुड़े पूरे परिवेश-परिजनों के प्रति कृतज्ञता।

राजस्थानी सभा के सम्पादन में श्री डीडवानियाजी ने साथ बैठने और सेठियाजी की कृतियों का आनन्द लेने का अवसर मिला, उनके प्रति कृतज्ञ।

सेठियाजी के साहित्य का रसास्वादन परिवार में सहधर्मिणी सबकी सहित बार-बार पाया, साधक कृतज्ञ।

कवि की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष में सहधर्मिणी ने राजस्थानी रचनाओं के अनुवाद की प्रेरणा दी, साधक कृतज्ञ।

अनुवाद कार्य लगातार दो सप्ताह में आनन्दपूर्वक चला, यह पूरा तो नहीं है, किन्तु साधक के कृतज्ञ होने के लिए पर्याप्त है। अस्तु,

इस यज्ञ में सहायक साधक का परिवार, कार्यालय के मित्र, श्री सतीश तिवारी, श्री शशिधर शर्मा, श्री प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री महावीर बजाज, श्री जयप्रकाश सेठिया, श्री किशन सेठिया आदि सभी मित्रों के प्रति कृतज्ञ है साधक।

इस पुस्तक के लिए प्रयुक्त सारे सन्दर्भ ग्रन्थ स्वप्रकाशित हैं, उनके प्रति सम्मान पूर्वक कृतज्ञ। इस कृति के बाद कपकपी छोड़ दो स्वस्थता से आ गई, उस भावी के प्रति कृतज्ञ।

देखे-अनदेखे समस्त भावों के प्रति कृतज्ञ है साधक।

## समदर्शी आँख

आँख रै दो बेटा। एक रो नाँव साच'र दूजै रो नाँव सपनूं। साच री लुगाई दीठ, सपनैं री लुगाई नींद। जेठाणी'र देराणी में अणबणती। दीठ अताळ तो नींद पताळ। एक घरां रैव तो दूजी पीरै। एक रो काम उघाड़णूं तो दूजी रो काम ढकणूं। दीठ अणूंती अचपळी, तो नींद साव ही पळगोड़। पण घणूं अचम्भो इण बात रो कै सासू ने दोन्यूं एकसी प्यारी! बुआँ री बडाई करती-करती को थकै नीं! कवै, इसी सुपातर'क पलकां में घाली को रड़कै नीं। एक च्यानणैं रै तळाब री मछली तो दूजी अंधेरै रै समुदर री सीप! ओपमा थोड़ी गुण घणां। आँख रो मोट्यार 'मन' सुणै जद कवै – छोरां री मा तूं तो समदरसी है।

## शब्दार्थ

दीठ = दृष्टि; अताळ = आकाश; पताळ = पाताल; पीरै = मायके; अचपळी = चंचल; पळगोड = आलसी; आपमा = उपमा; सुपातर = सुपात्र; रडकना = चुभना;

## पाठार्थ

आँख के दो पुत्र। एक का नाम सच, दूसरे का सपना। सच की पत्नी दृष्टि, सपने की पत्नी नींद। देवरानी और जेठानी में अनबन। दृष्टि आकाश में तो नींद पाताल में। एक घर पर रहे तो दूसरी मायके। एक का काम उद्घाटित करना तो दूसरी का ढकना। दृष्टि बेहद चंचल तो नींद निपट आलसी। पर ज्यादा आश्चर्य इस बात का कि सास को दोनों एकसी प्यारी। बहुओं की बड़ाई करते थकती नहीं। कहती है, कि ऐसी सुपात्र है कि पलकों में रखी नहीं चुभती। एक रोशनी के तालाब की मछली तो दूसरी अंधेरे के समुद्र की सीप। उपमा कम, गुण अधिक। आँख का स्वामी मन सुनकर कहता है – लाडलों की मां, तू तो समदर्शी है।





## भावार्थ

सच और सपना, जागृति और नींद, देवरानी और जिठानी, आकाश और पाताल, ससुराल और मायका, खोलना और ढकना, चंचल और आलसी; इन परस्पर विरोधी छोरों में समीकरण ढूंढना और जन गण मन को उस समीकरण पर राजी कर लेने का अद्भुत कौशल है कवि में! वैसे दर्शन के स्तर पर शून्य ही परम है, सारा कुछ अद्वैत है; किन्तु देह के स्तर पर आकर इस अद्वैत को कह देना कमाल की बात है। 'आँख का स्वामी मन' कहकर मन को पाँचों इन्द्रियों के परिवार का मुखिया बनाया; छठी इन्द्रिय साबित करके षट्दर्शनों से अलग दार्शनिक स्थापना सहज ही कर दी। प्रणाम कविवर!

सन्दर्भ – मध्यस्थ दर्शन; श्राद्ध,

## रोशनी और धुंआँ

दिवलै री निर्मोही च्यानणू तो एक फूंक में ही आपरै ठौड़ ठिकाणै जातो रयो पण औ धुंऔ तो टेढो पावणूं है, जको जठै जमग्यो क बठै स्यूं सोरै सांस सिरकणै रो नावँ ही कोनी लै।

### शब्दार्थ

ठौड़ ठिकाणै = अपनी निश्चित जगह, टेढो = विकट, पावणू = मेहमान, सोरै सास = आसानी से, सिरकणै = खिसकने, नावँ = नाम,

### पाठार्थ

दिये का निर्मोही प्रकाश तो एक ही फूंक में अपनी निश्चित जगह चला गया, पर यह धुँआ तो बड़ा विकट मेहमान है, आसानी से खिसकने का नाम ही नहीं लेता।



### भावार्थ

प्रकाश एक सकारात्मक भाव है, जबकि धुँआ नकारात्मक। दोनों का जनक दीपक विवेक का प्रतीक है। दीपक बुझते ही प्रकाश तत्काल गायब हो जाता है, जैसे विवेक बुझते ही ज्ञान और सत्य गायब हो जाता है। तभी दीपक बुझने का धुँआ पूरे परिवेश में टेढ़े-तिरछे तरीके से फैल जाता है, देर तक सांसों को परेशान करता है। प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है जबकि धुँआ भ्रम और अज्ञान का; दीपक रूपी विवेक के अभाव में चारों ओर भ्रम और अज्ञान काले धुँए की तरह व्याप जाता है, दुःख-दर्द और पीड़ा देता है। दीपक जलने तक अर्थात विवेक की रोशनी में हर अच्छा बुरा स्पष्ट दिखाई देता है, कोई परेशानी नहीं होती।

## सूप स्वभाव

तूंतड़ा बोल्या – देख्यो रै छायला थारो न्याय ? म्हानैं तो फटक'र परै बगा दिया'र आं सागो छोडणियाँ दगाबाज दाणाँ नै काळजियै री कोर कर'र राख्या है ?
छायलो कयो – डोफाँ, थाँनै तो हूँ बेकसूर मान'र ही छोड्या है, आँ बिसवासघात्याँ ताँई तो चाकी'र ऊँखळी त्यार है।

## शब्दार्थ

तूंतड़ा = धान का छिलका, छायला = सूप, सागो छोडणियाँ = साथ छोड़ने वाले, काळजियै री कोर = कलेजे का टुकड़ा, डोफाँ = अँधों, ऊँखळी = ऊखल

## पाठार्थ

छिलके बोले – सूप, देखा तुम्हारा न्याय ! हमें तो फटककर फेंक दिया, और इन साथ छोड़ने वाले दगाबाज दानों को अपने कलेजे के टुकड़े की तरह साथ रखा है ? सूप ने कहा – अंधों, तुम्हे तो मैंने बेकसूर जानकर ही छोड़ा है, इन विश्वासघाती दानों के लिए तो चक्की और उखल तैयार है।





## भावार्थ

सूप का काम है धान से छिलकों को अलग करना। छिलके अलग होना नहीं चाहते धान से, एक पालक-पोषक-संरक्षक की तरह अब तक धान से लिपटे रहे हैं, कवच की तरह धान को बाहरी दुष्प्रभाव से बचाने के दायित्व बोध ने छिलकों का मोह बढा भी रखा है। छिलकों को सूप खलनायक लगता है, जिसके कारण उनको दानों से जुदा होना पड़ा; साथ ही उनको दानों के विश्वासघात का भी गिला है। अपना दर्द वे सूप से कहते हैं कि आपने न्याय नहीं किया। बिना अपराध के हमको दानों से जुदा करके फ़ेंक दिया, मगर विश्वासघाती दानों को अपने कलेजे से लगाकर रखा है ? पाठक को छिलकों की शिकायत सही लगे, किन्तु इसी मोड़ पर कवि पूरे प्रसंग का दूसरा ही पक्ष सामने ले आते हैं। सूप छिलकों के अपमानित-आहत मन पर न सिर्फ़ मरहम लगाते हैं, बल्कि उन्हें नितान्त बेकसूर बताकर भावी दर्द से बचाने की सूचना भी देते हैं। सूप बताता है कि दानों के विश्वासघात की सजा उनको चक्की में पिसकर और ऊखल में पिटकर मिलनी है ! आदमी को सीख भी दे दी, कि विश्वासघात का दण्ड कल्पनातीत है।

## मथानी

दही पूछ्यो – झेरणां, रोजीनां मथ मथ'र म्हारो माजनूं बिगाड़ै, कीं थारै ही पल्लै पड़ै है'क नीं ?
झेरणूं बोल्यो – कीड़याँ तो काळजो रात्यूं चूंटै ही है, और'स कीं देख्यो नीं !

## शब्दार्थ

झेरणां = मथानी, रोजीनां = नित्य, माजनूं = इज्जत, कीड़्याँ = चींटीयाँ

## पाठार्थ

दही पूछता है – मथानी, नित्य मंथन करके तुम मेरा हुलिया तो बिगाड़ते हो, पर इससे तुम्हारे पल्ले भी कुछ पड़ता है ? मथानी बोली – चींटियाँ तो रातभर कलेजा चूंटती ही हैं, इसके अलावा तो कुछ दिखा नहीं !





## भावार्थ

दही, मथानी और चींटीयाँ आदि को प्रतीक बनाकर अस्तित्व की सूक्ष्म सच्चाई बताने की कोशिश की है कवि ने ! एक गहन रहस्यमय तथ्य को इतनी सहजता से कह देना कवि की सूक्ष्म दृष्टि का साक्ष्य है। बात सीधी सी है कि मथानी का प्रयोजन है दही मथकर नवनीत निकालना, और मन्थन की प्रक्रिया में मथानी के पांचों डंडे नवनीत से सनकर चिकने हो जाते हैं जिनपर चींटीयों का आना और मथानी को चाटना स्वाभाविक है। चींटियाँ आदमी को काटे तो अवश्य दर्द होता है, पर मथानी को भी दर्द ? और दही का जो पहला प्रश्न है कि मन्थन से उनका हुलिया खराब करके मथानी को क्या मिलता है – - यह भी हास्यास्पद बात है। मथानी अपना प्रयोजन पूरा करती है मन्थन करके, इसीमें दही के होने का प्रयोजन भी सध जाता है; न बने नवनीत और तक्र तो सड़कर खट्टा ही होना है दही को ! और बिचारी चींटियाँ ! वे तो अपने भोजन के लिए चारों तरफ़ चलकर प्रयत्न करती ही हैं, और मक्खन की चिकनाई पर उनका आना प्रयोजन सहित है। अस्तित्व में सब कुछ सप्रयोजन है, यह कवि ने देखा-जाना और साहित्य की इस अद्भुत विधा में पिरो दिया, सृष्टिरचना के सत्य को विपरीत प्रतीकों के सहज वार्तालाप से कह दिया। दही, मथानी और चींटियों के बीच जो वार्ता में चलता है, वह सब कवि की कोरी कल्पना है और सत्य नहीं है। इसी हास्यास्पद 'असत्य' के दर्पण से सृष्टि का गहन सूक्ष्म सत्य देखना लेखक और पाठक के परस्पर समीकरण का सुफ़ल है।

## काँटा और सुई

पग कयो – सुई, तूं काँटै नै तुरत फुरत ही किंया काढ लै ?
सुई बोली – अरे भोळिया, घर रो भेदू लंका ढावै, आ कैबत तो घणी पुराणी है।

## शब्दार्थ

भोळिया = भोले आदमी, कैबत = कहावत, घणी = बहुत

## पाठार्थ

पैर ने कहा – सुई, तू काँटे को तत्काल कैसे निकाल लेती है ? सुई बोली – अरे भोले, घर का भेदी लंका ढहाए यह कहावत तो बहुत पुरानी है।





## भावार्थ

पौराणिक सन्दर्भ है, घर का भेदी लंका ढहाता है। इस सन्दर्भ का नायक है विभीषण; जो राम का, न्याय और सत्य का पक्षधर होने से सकारात्मक अर्थों में नायक है; जबकि अजेय योद्धा भाई रावण का, अपने कुल का विरोधी होने से इस कहावत में नकारात्मक नायक अर्थात खलनायक है। एक ही व्यक्ति में नायक और खलनायक साथ साथ स्वीकारने वाला अद्भुत समाज है यह हिन्दू ! श्रीमद्भग्वद्गीता साक्षी है जिसमें श्री भगवान स्वयँ अपने बारे में घोषणापूर्वक कहते हैं – कि जुए में मैं ही छल हूँ और तेजस्वियों का तेज भी मैं ही हूँ। परस्पर धुर विरोधी तथ्य सत्य साथ-साथ होना ही अस्तित्व का अन्तिम सत्य है। सुई से काँटा निकालने की सामान्य सी बात में कवि ने सृष्टि के परम सत्य को देखा जाना है।

सन्दर्भ – मध्यस्त दर्शन, धोती शतक आदि

## काँटे की शिकायत ?

काँटो बोल्यो – मनै काढण ताँई तो तू नागी सुई नै ही ले भाग्यो, कीं मिनखाचारो तो राख्या कर ?
मिनख कयो – म्हारों काँईं दोष ? नागै री रग नागै स्यूँ ही दबै !
सूरड़ा देव 'र गनसूरड़ा पुजारा !

### शब्दार्थ

काढणा = निकालना, मिनखाचारो = मानव सहज आचरण, सूरड़ा = सुअर (गन्दगी के संदर्भ सहित) गनसूरड़ा = सूअर सी गन्दी मानसिकता के आदमी

### पाठार्थ

काँटा बोला – मुझे बाहर निकालने के लिए तुम नंगी सुई को ले भागे, कुछ तो मानवी आचरण पालते ! आदमी ने कहा – मेरा क्या दोष ? नंगे की रग कोई नंगा ही दबा सकता है; सुअर यदि देवता हैं तो सुअर-प्रकृति के आदमी से ही पूजित होंगे।





### भावार्थ

जैसे देव वैसे पुजारी ! अब काँटे को निकालने के लिए किसी फूल को तो नहीं लगाया जा सकता ! काँटा काँटे से ही निकाला जा सकता है, फ़िर भी मानवीय व्यवहार के सन्दर्भ में यह प्रतीक दुविधाजनक बनते हैं। इसीसे कई सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य और कहावतें उलझन पूर्ण हो जाती हैं। एक तरफ़ तो चाणक्य का 'शठे शाठ्यं समाचरेत' है तो दूसरी तरफ़ का उदाहरण वह सन्त है जो बार बार काटने वाले बिच्छू को यह कहकर बचाता है कि जब यह अपना स्वभाव नहीं त्यागता तो मैं इन्सान होकर कैसे इन्सानियत छोड़ दूँ ! एक तरफ़ तो गीता गायक श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को अपने ही परिजनों को मारने का उपदेश है तो दूसरी तरफ़ महावीर की 'अहिंसा परमो धर्मः' ! ऐसे अनेक परस्पर विरोधी आख्यान सामान्य जन के बीच वाद-विवाद का विषय बनते हैं। संवाद के अभाव में बनता विवाद परस्पर विरोध, विद्रोह और सँघर्ष की भूमिका बनाता है। मानवीय इतिहास में हुए अधिकतर युद्ध वैचारिक भिन्नता के फ़ल हैं। इसे वर्तमान में भी आसानी से देखा जाना जा सकता है। कवि सेठियाजी मूलतः दार्शनिक कवि हैं। भिन्न मनोभूमिका और भिन्न परिस्थिति में कवि जैसा देखता है, वैसा लिखता है। इन सूत्रों को यथायोग्य सन्दर्भ सहित ही विवेचित किया जा सकता है, सन्दर्भ से कटते ही अर्थ बदल जाते हैं। यही बात कवि से अपनी 'मर्म' पुस्तक में कह दी है – "सन्दर्भ से कटकर, अर्थ मर गया घुटकर।"

सन्दर्भ – मर्म, उद्भव उत्कर्ष और अन्त...

## मौत

हँसतो हँसतो ही फूल अचाणचूको झड़्यो। पानड़ा बेलीताप कर'र पूछ्यो – आ चानड़ी मौत कुनैं स्यूँ आई ? रूँख रो'र बोल्यो – कठीनै स्यूँ बताऊँ ? को आतीं रा खोज मँडै'न को जातीं रा!

## शब्दार्थ

अचाणचूको = अचानक, बेलीताप = पश्चाताप, चानड़ी = दुष्ट, कुनैं = कहाँ से, खोज = निशान, मँडना = चित्रित होना,

## पाठार्थ

हँसते हँसते ही पुष्प अचानक झड़ गया। पत्तों ने दुःख संवेदनापूर्वक पूछा – यह दुष्ट मौत किधर से आई ? पेड़ ने रोकर कहा – क्या बताऊँ ? न आते कोई निशान बनाती है, न जाते कोई निशान छोड़ती है।





## भावार्थ

आम आदमी के मन में चिरकाल से मृत्यु एक रहस्य बनी हुई है। कैसे देह से प्राण निकलते हैं, निकलकर कहाँ जाते हैं... इत्यादि प्रश्न अनेक प्रकार से आदमी के मन-मस्तिष्क को मथते हैं। इसी उलझन को दार्शनिक कवि प्राणावस्था की इकाई पेड़, फूल, पत्तों आदि प्रतीकों में कहता है। पुष्प के टूट कर गिरने की सहज सामान्य घटना में मानव मन के गहन प्रश्नों को समाधान की दिशा में देखकर रोचक काव्यात्मक प्रवाह में कह देना कवि की विशेषता है। जैसे मानवों को आत्मीय जनों की मृत्यु का शोक होता है, वैसे ही वृक्ष-परिवार के सदस्य पत्ते डालियाँ आदि पुष्प के चिर-बिछुड़न से संवेदित होकर परस्पर बतियाते हैं। पुष्प के साथ बिताए पलों का पुनर्स्मरण करते हुए बात यहाँ तक पहुँचती है कि आखिर यह मृत्यु आती कहाँ से है ?

भारतीय समाज में आत्मीय की मृत्यु के बाद सभी मित्र-परिजनों का मिलना, संवेदना-संवाद करना आदि में मृत्यु की विवेचना सहज स्वाभाविक विषय बनता है। इस गंभीर प्रश्न पर अनेक मत-मतान्तरों के साथ लम्बी चर्चा करने का भी विधान बन गया, इसी को तीसरा, चौथा या बारहवां नाम से परम्परा में जाना जाता है। "जीवन की चर्चा मृत्यु से और अथ की अर्चा इति से - मर्म" कवि का अन्यत्र कहा गया सूत्र है। 'जीवन' को भी पहेली मान लिया गया है और मृत्यु को भी ! इससे आगे बढकर दोनों को परस्पर भिन्न और विरोधी मान लिया गया ? इस गळगचिए में कवि ने इस सारे मानवीय भ्रम को सहजतापूर्वक कह दिया है ! जैसे कबीर की उलटबाँसियाँ जीवन के गहन सत्य को समाधान के धरातल से कही गई हैं, किन्तु सामान्य जन के लिए वह सब एक अलग पहेली बन गया ? ठीक इसी प्रकार सेठियाजी की रचनाएं लगती पहेली हैं, किन्तु दिखाती जीवन का सहज सत्य सरलतम भाषा में है। एक शिशु की सी सरलता से वृक्ष-परिवार के संवाद को सुन-समझ लिया कवि ने! शिशु की बातें बड़े पण्डित जन हँसकर टाल जाते हैं!

सन्दर्भ – श्राद्ध, धृत्यायन

## मौत

हँसतो हँसतो ही फूल अचाणचूको झड़्यो। पानड़ा बेलीताप कर'र पूछ्यो – आ चानड़ी मौत कुनैं स्यूँ आई ? रूँख रो'र बोल्यो – कठीनै स्यूँ बताऊँ ? को आतीं रा खोज मँडै'न को जातीं रा !

## शब्दार्थ

अचाणचूको = अचानक, बेलीताप = पश्चाताप, चानड़ी = दुष्ट, कुनैं = कहाँ से, खोज = निशान, मँडना = चित्रित होना,

## पाठार्थ

हँसते हँसते ही पुष्प अचानक झड़ गया। पत्तों ने दुःख संवेदनापूर्वक पूछा – यह दुष्ट मौत किधर से आई ? पेड़ ने रोकर कहा – क्या बताऊँ ? न आते कोई निशान बनाती है, न जाते कोई निशान छोड़ती है।





## भावार्थ

आम आदमी के मन में चिरकाल से मृत्यु एक रहस्य बनी हुई है। कैसे देह से प्राण निकलते हैं, निकलकर कहाँ जाते हैं... इत्यादि प्रश्न अनेक प्रकार से आदमी के मन-मस्तिष्क को मथते हैं। इसी उलझन को दार्शनिक कवि प्राणावस्था की इकाई पेड़, फूल, पत्तों आदि प्रतीकों में कहता है। पुष्प के टूट कर गिरने की सहज सामान्य घटना में मानव मन के गहन प्रश्नों को समाधान की दिशा में देखकर रोचक काव्यात्मक प्रवाह में कह देना कवि की विशेषता है। जैसे मानवों को आत्मीय जनों की मृत्यु का शोक होता है, वैसे ही वृक्ष-परिवार के सदस्य पत्ते डालियाँ आदि पुष्प के चिर-बिछुड़न से संवेदित होकर परस्पर बतियाते हैं। पुष्प के साथ बिताए पलों का पुनर्स्मरण करते हुए बात यहाँ तक पहुँचती है कि आखिर यह मृत्यु आती कहाँ से है ?

भारतीय समाज में आत्मीय की मृत्यु के बाद सभी मित्र-परिजनों का मिलना, संवेदना-संवाद करना आदि में मृत्यु की विवेचना सहज स्वाभाविक विषय बनता है। इस गंभीर प्रश्न पर अनेक मत-मतान्तरों के साथ लम्बी चर्चा करने का भी विधान बन गया, इसी को तीसरा, चौथा या बारहवां नाम से परम्परा में जाना जाता है। "जीवन की चर्चा मृत्यु से और अथ की अर्चा इति से - मर्म" कवि का अन्यत्र कहा गया सूत्र है। 'जीवन' को भी पहेली मान लिया गया है और मृत्यु को भी ! इससे आगे बढकर दोनों को परस्पर भिन्न और विरोधी मान लिया गया ? इस गळगचिए में कवि ने इस सारे मानवीय भ्रम को सहजतापूर्वक कह दिया है ! जैसे कबीर की उलटबाँसियाँ जीवन के गहन सत्य को समाधान के धरातल से कही गई हैं, किन्तु सामान्य जन के लिए वह सब एक अलग पहेली बन गया ? ठीक इसी प्रकार सेठियाजी की रचनाएं लगती पहेली हैं, किन्तु दिखाती जीवन का सहज सत्य सरलतम भाषा में है। एक शिशु की सी सरलता से वृक्ष-परिवार के संवाद को सुन-समझ लिया कवि ने ! शिशु की बातें बड़े पण्डित जन हँसकर टाल जाते हैं !

सन्दर्भ – श्राद्ध, धृत्यायन

## मौत

हँसतो हँसतो ही फूल अचाणचूको झड़्यो। पानड़ा बेलीताप कर'र पूछ्यो – आ चानड़ी मौत कुनैं स्यूँ आई ? रूँख रो'र बोल्यो – कठीनै स्यूँ बताऊँ ? को आतीं रा खोज मँडै'न को जातीं रा !

## शब्दार्थ

अचाणचूको = अचानक, बेलीताप = पश्चाताप, चानड़ी = दुष्ट, कुनैं = कहाँ से, खोज = निशान, मँडना = चित्रित होना,

## पाठार्थ

हँसते हँसते ही पुष्प अचानक झड़ गया। पत्तों ने दुःख संवेदनापूर्वक पूछा – यह दुष्ट मौत किधर से आई ? पेड़ ने रोकर कहा – क्या बताऊँ ? न आते कोई निशान बनाती है, न जाते कोई निशान छोड़ती है।





## भावार्थ

आम आदमी के मन में चिरकाल से मृत्यु एक रहस्य बनी हुई है। कैसे देह से प्राण निकलते हैं, निकलकर कहाँ जाते हैं... इत्यादि प्रश्न अनेक प्रकार से आदमी के मन-मस्तिष्क को मथते हैं। इसी उलझन को दार्शनिक कवि प्राणावस्था की इकाई पेड़, फूल, पत्तों आदि प्रतीकों में कहता है। पुष्प के टूट कर गिरने की सहज सामान्य घटना में मानव मन के गहन प्रश्नों को समाधान की दिशा में देखकर रोचक काव्यात्मक प्रवाह में कह देना कवि की विशेषता है। जैसे मानवों को आत्मीय जनों की मृत्यु का शोक होता है, वैसे ही वृक्ष-परिवार के सदस्य पत्ते डालियाँ आदि पुष्प के चिर-बिछुड़न से संवेदित होकर परस्पर बतियाते हैं। पुष्प के साथ बिताए पलों का पुनर्स्मरण करते हुए बात यहाँ तक पहुँचती है कि आखिर यह मृत्यु आती कहाँ से है ?
भारतीय समाज में आत्मीय की मृत्यु के बाद सभी मित्र-परिजनों का मिलना, संवेदना-संवाद करना आदि में मृत्यु की विवेचना सहज स्वाभाविक विषय बनता है। इस गंभीर प्रश्न पर अनेक मत-मतान्तरों के साथ लम्बी चर्चा करने का भी विधान बन गया, इसी को तीसरा, चौथा या बारहवां नाम से परम्परा में जाना जाता है। "जीवन की चर्चा मृत्यु से और अथ की अर्चा इति से - मर्म" कवि का अन्यत्र कहा गया सूत्र है। 'जीवन' को भी पहेली मान लिया गया है और मृत्यु को भी ! इससे आगे बढकर दोनों को परस्पर भिन्न और विरोधी मान लिया गया ? इस गळगचिए में कवि ने इस सारे मानवीय भ्रम को सहजतापूर्वक कह दिया है ! जैसे कबीर की उलटबाँसियाँ जीवन के गहन सत्य को समाधान के धरातल से कही गई हैं, किन्तु सामान्य जन के लिए वह सब एक अलग पहेली बन गया ? ठीक इसी प्रकार सेठियाजी की रचनाएं लगती पहेली हैं, किन्तु दिखाती जीवन का सहज सत्य सरलतम भाषा में है। एक शिशु की सी सरलता से वृक्ष-परिवार के संवाद को सुन-समझ लिया कवि ने ! शिशु की बातें बड़े पण्डित जन हँसकर टाल जाते हैं !

सन्दर्भ – श्राद्ध, धृत्यायन

## आँसू और हँसी

हँसी बोली – आँसूड़ा, थारो ओ काँई सुभाव ? आवै जणां छानै सी'क ही टळक'र जांतो रैव ? मैं तो आऊँ जणां कांई ठा कता'क कानां में फ़िर'र जाऊँ हूँ ? दोन्याँ रो पड़ोसी नाक आ बात सुण'र होळै सी'क कयो – ऊँचै'र नीचै कुळ रै में अतो ही फ़रक है।

## शब्दार्थ

छानै = छुपके, होळै सी'क = धीमे से, टळक'र = टपककर,

## पाठार्थ

हँसी बोली – हे आँसू ! कैसा है तुम्हारा स्वभाव ? जब भी आते हो, चुपके से टपककर लौट जाते हो ? मैं जब आता हूँ तो न जाने कितने कानों को सूचना देते हुए जाता हूँ ! दोनों के पड़ोसी नाक ने यह बात सुनकर धीरे से अपना मत दिया – ऊँचे और नीचे कुल में यही अन्तर है।





## भावार्थ

आँखों से बहता आँसू ऊँचे कुल का और होठों की हँसी नीचे कुल की ! दूसरी दिशा से हँसी के अनेक मित्र बन जाते हैं, जबकि आँसू अक्सर अकेला रह जाता है; तो हँसी ऊँचे कुल की हुई और आँसू नीचे कुल के ! दार्शनिक कवि ने यहाँ दोनों आयामों को एकसाथ कहने का साहस किया है। आँसू का अकेले चुपचाप लौट जाना संकेत करता है कि दुःख में कोई साथ नहीं देता, जबकि हँसी-खुशी के साथ सारी दुनियाँ आ जाती है। जन सामान्य सुख चाहता है, सुविधा चाहता है, वैभव चाहता है, सौन्दर्य चाहता है। आँसू दुःख, पीड़ा, दैन्य और दुर्बलता के प्रतीक हैं; किसी की चाहत नहीं हो सकते। आँसुओं का अन्य आयामी मूल्याँकन पर-दुःख कातरता से है। स्वयं को पीड़ित मानकर निकले आँसू शिकायती हैं, जबकि अन्य जन के दुःख में कारुणिक होकर निकले आँसू उच्च मानवीय मूल्यों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार हँसी की विवेचना भी भिन्न सन्दर्भों में नकारात्मक या सकारात्मक हो सकती है। कवि ने सर्वसामान्य सन्दर्भों को स्वीकारा है। 'ऊँचे-नीचे कुल का अन्तर' विशिष्ट सामाजिक समीकरणों से बनता है, जिसे वर्तमान शिक्षा-मीडिया आदि पूरी तरह नकारते हैं, इस कसौटी पर सेठियाजी पर 'बुर्जुआ' होने का आरोप संभावित है। 'समाज का दर्पण साहित्य' बदलते समाज के साथ करवट लेता है।

सन्दर्भ – विश्व विषाद योग - 2

## मोती और धागा - 53

डोरो कयो – अरे मोत्याँ, मैं तो थानै पो'र एक ठौड़ कर्या, मैं ही थानैं गळहार बणनै रो मोको दियो, पण म्हारो तो कठैई नाँव'न नोरो ? देखै जको ही कवै ओ मोत्याँ रो हार है, डोरै रो हार तो कोई को बतावै नीं ?
मोती बोल्या – जगत री जीभ तो म्हाँ सूं ही को पकड़ीजै नीं ! म्हे तो तूं लुक्यो जियां ही उघाड़ में ल्याया पण तूं थारो सरळपणूं छोड'र म्हानैं ही आपसरी में अलघा अलघा राखण री बदनीत सूं आखर में मन में गाँठ बाँध ली जद'स म्हे के कराँ ? बापड़ो मिनख तकायत थारै ओछापणै नै लाजाँ मरतो नस रै ओलै ही रखै है !

### शब्दार्थ

शब्दार्थ – गळहार = गले का आभूषण, नाँव न नोरो = (मुहावरा) न नाम न कोई निहोरा या सम्मान, उघाड़ = उद्घाटित, नस रै ओलै = गर्दन के पीछे,

### पाठार्थ

धागे ने कहा – अरे मोतियों ! मैंने तो तुम सबको पिरोकर एकजगह किया, मैंने ही तुमको गले का हार बनने का सौभाग्य दिया; पर मेरा तो कहीं नाम-निहोरा ही नहीं ? जो भी देखता है, मोतियों का हार ही बताता है, धागे का हार तो कोई नहीं कहता ?
मोती बोले – दुनियाँ की जीभ तो हम भी नहीं पकड़ सकते। हम तो हर बार तुम्हें छिपने के स्थान से बाहर ही लाते रहे, पर तुमने अपना सरलपना छोड़कर हमको ही अलग अलग करने की बदनीयत से मन में गाँठ बाँध ली, तो हम क्या करते ? बिचारा आदमी तुम्हारे ओछेपन से शर्मिन्दा होकर तुमको अपनी गर्दन के पीछे छिपा लेता है।





### भावार्थ

मोती गूँथने की राजस्थानी कलात्मक शैली को उजागर किया है सेठियाजी ने ! मोती पिरोने का सीधा सरल तरीका है कि धागे में एक एक करके सारे मोती सीधे पिरो दें। इस विधा में कालान्तर में धागा टूटने से सारे मोती एकसाथ बिखर जाते हैं, कीमती मोतियों के खो जाने का अन्देशा रहता है। कुशल पटवा ने गलहार इस कलात्मकता से गूँथा कि कभी धागा टूट भी जाए तो एक भी मोती नहीं बिखरता। धागे से इस तरह हर मोती की तालाबन्द सुरक्षा हो जाती है कि एक-एक मोती अपनी स्वतन्त्र सत्ता के साथ शोभा पा जाता है। इस प्रक्रिया में मोती के छोटे से छेद के अन्दर ही अन्दर धागे को गाँठें लगती हैं। इस गाँठ-प्रक्रिया में धागा स्वयँ ही उलझता है, ग्रन्थित हो जाता है; सरलमना कवि ने इसी तरफ़ मोतियों के बहाने से इंगित किया है। पुनः समस्त मोती शेष होने पर धागे को इस प्रकार गूँथकर रस्सी का रूप दिया जाता है कि कण्ठहार धारण करने वाले की कद-काठी के अनुरूप गले और सीने पर सजाया जा सके। धागे की ग्रन्थित डोरी गर्दन के पीछे रहती है, जिसे सेठियाजी ने 'गले की ओट छिपाने' की संज्ञा दे दी।
मनुष्य के सन्दर्भ में धागा अहँकार और मोती शुद्ध चेतना के प्रतीक हैं। अहँकार एक आवश्यक बन्धन है, छिपा रहे तो मानवीय गुण स्वरुप मोती शोभा पाते हैं। अहँकार रुपी धागा ऊपर आने की कोशिश करे तो मोती तो निभा लेते हैं, किन्तु अहँकार समाज में स्वीकृति नहीं पाता। उसे गले के पीछे छिपाकर रखते हैं गुणी जन !

सन्दर्भ - श्राद्ध; विश्व विषाद योग -1;

## विष बनाम अमृत 54

आकड़ै री नानी सी'क कूंपळ पींची'र दग दग कर'र दूध री तूतकी सी छूटगी। विस री आ दातारी देख'र कामधेणु भौम छोड'र सुरग में जा'र बसगी! गुळसाँठ नै जड़ांमूळ स्यूं उपाड़, गंडासै सूं बोटी-बोटी काट'र जठै ताँई घाणी में पेल्यो बठै तांई रस छोडणै रो लेखो ही काँई ? इमरत रो ओ सूमपणूं (समपणूं) देख'र लिछमी सुरग छोड'र संदेही धरती पर आ'र बासो लियो।

### शब्दार्थ

आकडा = आक का पौधा, कूंपळ = कोंपल, पींचना = दबाना, दग दग = धारबन्ध, दातारी = उदारता, गुळसाँठ = ईख का डंडा, उपाड़ना = उखाड़ना, सूमपणूं = कंजूसी, (समपणूं = समता) संदेही = सदेह,

### पाठार्थ

आक की नन्हीं सी कूंपल को दबाया और दूध की धार छूट पड़ी ! विष की यह उदारता देखकर कामधेनु धरती छोड़कर स्वर्ग में जा बसी।
ईख को जड़मूल से उखाड़कर, गंडासे से बोटी बोटी काटकर घाणी में पेलने तक छूटती तेज रसधार का कहना ही क्या ! अमृत की यह कंजूसी (अथवा समता) देखकर लक्ष्मी स्वर्ग छोड़कर सदेह धरती पर आ बसी।





### भावार्थ

एक तरफ़ विष की बहुतायत से घबराकर कामधेनु धरा से भाग कर स्वर्ग जा छुपती है, तो दूसरी तरफ़ धरती की कोख से पैदा हुआ ईख अपना अमृत बेथाक लुटाता है । स्वर्गजनित अमृत का स्रोत कामधेनु को आक की झरझरती विषधार तो दिखाई दी किन्तु ईख-अमृत की उदार धारा न दिखाई दी, इसीको कवि ने उसका सूमपना अर्थात कंजूसी कह दिया। उसके दूसरे भाग में ईख रस की अमृत मिठास स्वर्गस्थ लक्ष्मी का मन लुभाती है और वह सशरीर धरती पर आ बसती है, धन के रूप में। सब प्रतीकों का मामला है। स्वर्ग से बढकर महिमा हमारी इसी धरा की है । यहाँ अमृत भी है विष भी; विवेकपूर्वक यथायोग्य उपयोग की बात है बस !

## थोथी ऊँचाई

बाँस कयो – मिनख, म्हारै फूल लागै न फ़ळ, फ़ेर मनै किस्यै लालच स्यूँ जड़मूळ स्यूँ काटै है ?
मिनख बोल्यो – गुणहीन री थोथी ऊँचाई म्हारै स्यूँ कोनी देखीजै।

### शब्दार्थ

थोथी = खाली,

### पाठार्थ

बाँस ने कहा – मनुष्य ! मेरे तो न फूल लगते हैं न फ़ल, फ़िर किस लोभ से तू मुझे जड़मूल से उखाड़ता है ? मनुष्य बोला – गुणहीन की रिक्त ऊँचाई मुझसे नहीं देखी जाती।





### भावार्थ

मनुष्य ने बाँस को तो कह दिया कि गुणहीन की थोथी ऊँचाई उससे नहीं देखी जाती, किन्तु स्वयँ अपने लिए इस पैमाने को निरन्तर नकारता है। छोटे कद के लोग सब क्षेत्रों में बड़े पदों पर आसीन हैं। तन्त्र की बनावट ऐसी है कि गुणवान व्यक्ति प्रगति के इन खेमों में प्रवेश ही न पा सके। कभी कोई लाइन में आ भी जाए, तो जैसे कौवों का झुण्ड एकसाथ मिलकर कोयल के सुन्दर घोंसले को उखाड़ फ़ेंकता है, वैसे ही गुणी व्यक्ति बाहर कर दिया जाता है। इस बाधा से सँघर्ष करके कोई ऊपर आ जाए तो तन्त्र के बहुसंख्यजन उसे अपने जैसा बनने पर मजबूर कर देते हैं। इक्का-दुक्का बच जाए तो 'अकेला चना भाड़ कैसे फ़ोड़ेगा ?' के नियम से तन्त्र के जुल्म जारी रहते हैं। बिचारे बाँस में तो फ़िर भी अनेक गुण हैं, तन्त्रस्थ उच्चपदेन मनुष्य तो उस सबसे रिक्त-मुक्त ही आजीवन जन-गण-मन पर बोझ बने रहते हैं। शिक्षा, राजगद्दी, धर्मगद्दी और न्यायगद्दी सभी स्थानों पर (कम से कम भारत में) यही दृश्य स्पष्ट दिखाई देता है। प्रसिद्ध शेर है –

"बर्बाद गुलिश्ताँ करने को बस एक ही उल्लू काफ़ी था,
हर शाख पे उल्लू बैठा है, अंजामें गुलिश्ताँ क्या होगा ।"

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त ..., विश्व विषाद योग -2;

## शिशु की नजर से सूर्य-56

दिन रै छोरै रै हाथ स्यूँ सूरज रो दड़ो छूटर नीचै जा पड़्यो, बापड़ै छोरै रो मूंडो कळूँठीजग्योर आँख्याँ में आँसू आग्या। अणसमझाँ भवूँ तो अन्धेरो पड़ग्योर तारा चिमकण नै लागग्या।

### शब्दार्थ

छोरा = बच्चा, दड़ो = गेंद, कळूँठना = काला होना, अणसमझ = नासमझ, भवूँ = के अनुसार,

### पाठार्थ

दिन रूपी बालक के हाथ से सूरज रूपी गेंद छूट कर नीचे जा पड़ी, बिचारे का मुँह भय से काला हो गया और आँखों में आँसू आ गए। नासमझों के लिए अंधेरा छा गया और तारे चमकने लगे।





### भावार्थ

प्रकृति की सर्वसामान्य रचना को एक मासूम शिशु की नजर से देखकर कवि ने अद्भुत सुन्दर रंग उकेर दिए हैं इस शब्दचित्र में। धरती से बड़ा होगा सूरज का माप, किन्तु एक शिशु की नजर में उसका महत्व एक चमकीली गेंद जितना ही है, जिसे वह उछाल उछाल कर आनन्दित हो। अब इस अनजानी वस्तु गेंद से खेलते हुए वह हाथ से छूट जाए, टूट-फूट जाए या खो जाए तो माँ की डाँट-डपट का भय, पिता के चाँटे का खौफ। उस भय से दिवस रूपी बालक का मुँह काला हुआ, अर्थात सूरज डूबने पर हुआ अंधियारा। बालक की आँखों से मोती से आँसू ढलके, तो उन मोतियों की चमकार में तारे देख लेना शिशु-सुलभ वरदान ही कहा जाएगा। धन्य हैं कविवर सेठियाजी जिन्होंने इस ऊँचाई पर भी अपनी शिशुवत मासूमियत को बनाए रखा।

सन्दर्भ – श्राद्ध, नन्हीं सी उड़ान,

## सपने का सच

नैणाँ रै मै'ल में रमती सपनाँ री राजकँवरी एक दिन बगत रै घोड़ै पर असवार हू'र आँवतै साच रै राजकंवर नै देख्यो। राजकँवरी बीं रै सोवणै रूप पर रीझगी। पलकाँ री मुठ्याँ भर भर'र आँसूड़ा रा अणबींध्या मोती निछावर कर्या। देखणियो कयो – बापड़ै में बिखो पड़्यो जणाँ आँसूड़ा टळकावै है।

### शब्दार्थ

नैण = नयन, मै'ल = महल, असवार = सवार, आँवतै = आते हुए, सोवणै = मनमोहक, अणबींध्या = निश्छिद्र, बिखो = विपदा,

### पाठार्थ

नयनों के महल में खेलती सपनों की राजकुमारी ने एक दिन समय के घोड़े पर सवार सच को आते देखा। राजकुमारी उसके मनमोहक रूप पर रीझ गई। पलकों की मुट्ठियाँ भर भर के आँसू रूपी कोरे मोती भेंट किए। देखने वालों ने कहा - बिचारा विरह का मारा रो रहा है!





### भावार्थ

सपनां और सच तो कभी मिलते नहीं। किन्तु सपने को सच का आकर्षण चिरकाल से बना ही है, हर सपना सच होना ही चाहता है। चिरकाल से सच के स्वागत में विह्वल होकर नयनों में आँसू आए हों या सच से न मिल पाने की वेदना से; कवि के लिए ये आँसू कोरे मोतियों से अनमोल हैं। विरह हो या मिलन की आस; दोनों ही अवस्थाएं वेदनापूर्ण हैं, इस वेदना से संवेदित कवि सेठियाजी ने नयन और आँसू को सपने और सच के बीच सेतु बनाकर मनमोहक 'गळगचिए' के रूप में पेश कर दिया। अब इन गळगचियों के खेल का आनन्द कोई पण्डित-मौला तो नहीं ले सकता ! आए कोई शैशवी मासूमियत लेकर तो पा जाए गळगचियों की खूबसूरती का आनन्द !

## मौन है सुरक्षा

मिनख आपरी जरूरत स्यूँ घणै सँच्योड़ै धन नै लुको'र राखणै ताँईं ताळां री जबान बन्द करी, कूँच्याँ रा कान खैंच्या, पण अबो आ बात कोनी सोची'क बन्द जबान रा ताळा घणाँ लबाळ हुवै है'र कान खैंच'र कड़तू रै बाँध्योड़ी कूँच्याँ कानांबाती कर्यां बिन्याँ कोनी रवै।

### शब्दार्थ

सँच्योड़ै = संचय किया हुआ, लुको'र = छिपाकर, लबाळ = अधिक बोलने वाले, कड़तू = कमर, कानांबाती = कनबतिया,

### पाठार्थ

मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार परिश्रमपूर्वक संचित धन को छिपाकर रखने के लिए तालों की जुबान बन्द की, चाबियों के कान खींचे; पर उसने यह नहीं सोचा कि बन्द जुबान के ताले खुद बढ चढकर बोलते हैं और कान खींचकर कमर से बाँधी गई चाबियाँ कनबतियां किए बिना नहीं मानती !





### भावार्थ

स्वतन्त्रता मानव का अस्तित्व सिद्ध अधिकार है, और मानव स्वयँ को अभिव्यक्त करना ही चाहता है। इस अभिव्यक्ति पर किसी भी प्रकार की तालाबन्दी संभव नहीं है। जन्मते ही बेजुबान शिशु अपनी मासूम अठखेलियों में अभिव्यक्त होना चाहता है, यही अठखेलियाँ अपनी कोरी मासूमियत के चलते सबका मन मोहती हैं। भाषा सीखने के बाद क्रमशः बालक की अभिव्यक्ति में पवित्र मासूमियत का स्थान शिक्षा-परम्परा-प्रदत्त चालाकी और चतुराई ले लेती है, जिसे सामान्य जन होशियारी कह देता है। शिशु को शिक्षित करने के क्रम में उसकी नैसर्गिक अभिव्यक्तियों को किन्हीं विशेष मान्यताओं के ढाँचे में ढाला जाता है; तोड़ा-मरोड़ा जाता है। हिन्दी फ़िल्म 'थ्री ईडियट्स' ने इसी बात को इस तरह कहा है कि – "न प्रश्न अपने हैं न उत्तर। शिक्षालयों में विद्यार्थियों को बने बनाए प्रश्न दिए जाते हैं, और परीक्षा में उत्तीर्ण होने की शर्त है कि उत्तर भी सिखाए गए शब्दों में दिए जाएं।" दूसरी तरफ़ धर्म-सम्प्रदाय आदि अपने अनुयायियों की सोच को निश्चित नियमावली में बाँध देते हैं। नन्हा शिशु यह प्रश्न नहीं कर सकता कि "एक+एक = दो ही क्यों होते हैं ? 1+1 = 11, या 101 या 1001 या फ़िर 1 ही क्यों नहीं हो सकता, जबकि अपनी कल्पना में ऐसा सोचता है !"

कवि इस गळगचिए में कहते हैं कि इस तरह की लाख पाबन्दियां भी मानव की नैसर्गिक अभिव्यक्तियों को रोक नहीं सकतीं। आदमी विद्रोह करके इस तालाबन्दी से बाहर आ जाता है, या अपनी जान दे देता है। हर देश और हर समाज में ऐसे उदाहरण सहज मिल जाते हैं। सेठियाजी भी मूलतः विद्रोही कवि हैं, प्रवाह के विरुद्ध लम्बे समय तक लिखते रहे, जो लिखा उसे जीने का प्रयत्न भी करते रहे। अपने ही परिवार समाज में उपेक्षित रहकर लगातार साहित्य सृजन में लगे रहना किसी तप से कम नहीं। उनकी रचनाओं का सही मूल्याँकन नहीं हुआ, तो स्वयँ उनका मूल्याँकन कौन करता ? उनकी कालजयी रचनाएं आज पाठक-समीक्षक के सिर चढकर बोलती हैं।

## श्रृँगार और खुराक

रूँख नै अडोळो कर'र सगळा पानड़ा झर झर'र नीचै आ पड़या, रूँख बिलखाणूं हू'र बोल्यो – सँगळियाँ, भलो हेत निभायो ? पानड़ो कयो – अरे भोळा, अत्ता दिन तो म्हे थारा सिणगार बण'र तनैं शोभा दीन्हीं ही, अबै थारी खुराक बण'र तनैं नयो जीवन देस्याँ, तूं म्हानैं धिंगाणैं ही ओळमो देवै है।

### शब्दार्थ

अडोळो = नंगा; बिलखाणूं = रुँआसा; सँगलिया = साथी; सिणगार = श्रृँगार; धिंगाणै = अकारण; ओळमो = दोष

### पाठार्थ

वृक्ष को नंगा करके सारे पत्ते झर झर करते नीचे आ गिरे, वृक्ष रुँआसा होकर बोला – साथियों, अच्छी प्रीत निभाई ? पत्तों ने कहा – अरे भोले दोस्त ! इतने दिन हम तुम्हारा श्रृँगार बने तेरी शोभा बढाते रहे, अब तुम्हारा भोजन बनकर तुम्हें नया जीवन देंगे; तुम तो अकारण ही हम पर दोषारोपण कर रहे हो !





### भावार्थ

प्रकृति की सारी क्रियाएं नियमबद्ध, सप्रयोजन और सर्वमंगल की दिशा में घटती हैं, भले ही घटना से प्रभावित इकाईयाँ उनकी समीक्षा अपनी सीमित सोच ने अनुसार अपने प्रिय-हित-लाभ की दृष्टि से करती हैं; उसी आधार पर दुर्घटना या शुभ घटना कह दिया जाता है। अब जैसे पतझड़ में सारे पत्तों का झड़ जाना बसन्त के आगमन का स्वागत है, बसन्त का आना भी तय है और पेड़ पर नए पल्लवों का खिलखिलाना भी। वृक्ष का पत्तों पर साथ छोड़ने का दोषारोपण अकारण है, यही बात पत्तों से कहलवाई है कवि ने। पत्तों की सफ़ाई में शुभ की सूचना है कि अभी भी वे वृक्ष के लिए खाद का काम कर रहे हैं, अर्थात हर घटना शुरु से अन्ततक सर्वशुभ की दिशा में है। इन्सान इस तथ्य को जानकर अपने समस्त दुःखों से बाहर आ सकता है। अस्तित्व में हर मानव के लिए यह मंजिल पाना तय है। जैसे पत्तों को अकारण दोष देना व्यर्थ है, वैसे ही मानव का किसी भी घटना को दुर्घटना कहना या उसका कारण किसी दूसरे को बताना व्यर्थ है।

सन्दर्भ – विश्व विषाद योग - 1

## पुण्य और पाप

एक दिन पुन्न'र पाप अचाणचूका ही एक चौरास्ते पर आ मिल्या, पुन्न साव उघाड़ो हो'र पाप लँगोट बाँध राखी ही। पाप बोल्यो – पुन्न, तन्नै नागै फ़िरतै न थोड़ी घणी ही लाज कोनी के ? पुन्न कयो – पाप जकी बगत ही तू म्हारै मन में आसी में ही थाँकाळी जियाँ ढक्यो ढूम्यो रया करस्यूँ।

### शब्दार्थ

पुन्न = पुण्य; अचाणचूका = अचानक; उघाड़ो = निर्वस्त्र; थाँकाळी = तुहारी; ढक्यो ढूम्यो = ढका छिपा;

### पाठार्थ

एक दिन पुण्य और पाप अचानक एक चौराहे पर मिल गए, पुण्य निपट निर्वस्त्र था और पाप ने लँगोटी पहन रखी थी। पाप बोला – पुण्य, नंगा घूमते हुए तुमको जरा भी लाज नहीं आती ? पुण्य ने कहा – जब भी तू मेरे मन में आ जाएगा पाप, तो मैं भी तुम्हारी तरह वस्त्रों से ढका-छिपा रहा करूँगा।





### भावार्थ

पाप की लँगोटी, अर्थात मनुष्य का अपनी झूठी शान को बचाने का व्यर्थ प्रयत्न; पुण्य तो सदैव पूरा निःशंक है, उसके पास कुछ भी छिपाने को नहीं है। पुण्य की चाहत का अर्थ है पारदर्शिता की चाहत। पाप कोई नहीं चाहता, अर्थात पर्देदारी किसी को पसन्द नहीं होती। बस दिक्कत यही है कि आदमी दूसरे हर आदमी से तो पूरी तरह पारदर्शिता की माँग करता है, स्वयँ सबके सामने लँगोटी उतारना नहीं चाहता ! अब होता यह है कि आदमी पहले पूरी दुनियाँ को पारदर्शिता की महिमा समझाने में जुट जाता है, इस अभियान में व्यस्तता के बहाने स्वयँ की लँगोटी उतारने अर्थात स्वयँ को पापमुक्त करने का समय ही नहीं मिलता ! परिणाम सबके सामने है। किस्सा प्रसिद्ध है कि एक राजा ने बहुत सुन्दर तालाब बनवाया। सबने तारीफ़ की तो राजा के मन में आया कि यह तालाब पानी की बजाय दूध से भरा जाए। मुनादी पिटवा दी कि कल प्रातः सभी अपने घर से लाकर एक लोटा दूध तालाब में डाले। एक आदमी ने अपना दूध बचाने की नीयत से मुँह अंधेरे जाकर तालाब में एक लोटा पानी डाल दिया, कि इतने दूध में एक लोटे पानी का पता न चलेगा। सवेरा होते होते सबने देखा कि तालाब पूरा पानी से भर गया है, उसमें थोड़ी सी सफ़ेदी है कि किसी ने दूध का लोटा डाल दिया है। अब राजा पानी के लिए किसे जिम्मेदार ठहराए ? मुँह अंधेरे सबने भरा तालाब ! जिससे पूछा जाए, वही कहता है कि उसने दूध डाला है, अपनी लँगोटी को सभी बचाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। इस लँगोटी बचाने के चक्कर में आदमी जान ही नहीं पाता कि दूध के तालाब की आयोजना उसी के श्रेय हित थी। यह भी ध्यान न रहा कि राजा को धोखा देने से पहले स्वयँ को धोखा दिया है उसने ! दोनों को मिलाकर तीसरा सूत्र बना कि हर दुःख के पहले निज का पाप कारक है, और हर पाप कर्ता की सजा बनता है। अनजाने ही अपना अमंगल साधे जाता है आदमी। पाप-पुण्य की यह विराट गाथा स्वयँ में समेटे यह गळगचिया पाठक को रास आए तो इसके साथ बार-बार खेलने की छूट है, मूल पाठ पढकर समझना और ज्यादा आनन्द देगा मित्रों !

सन्दर्भ - विश्व विषाद योग

## परनिन्दा

जीभ नै काबू में राखण ताँई कुदरत दाँताँ रा सींखचा लगाया, होठां रा परकोटा बणाया'र मौन रो ताळो लगा'र ग्यान री कूंची मिनख नै सूँप दी। जीभ री बाळपणै री साथण परनिन्दा आ देख'र सोच में पड़गी'र आपरी भायली जीभ नै कुदरत री कैद स्यूँ छुडाणै रो उपाव सोचण नै लागगी। एक दिन परनिन्दा सुन्याड़ देख'र मिनख रै मन रै मै'ल में जा पूगी। मिनख परनिन्दा री कानामीठी बोली सुण'र आपरो आपौ भूलग्यो। परनिन्दा तो धार विचार'र आई ही, मिनख नै आपरै सारै जाण'र होळै सी'क ग्यान री कूँची आपरै कबजै में करली'र मौन रो ताळो खोल जीभ नै सागै लै'र चट बारै निकळगी।

### शब्दार्थ

बाळपणै = बाल्यकालीन; साथण = सखी; सुन्याड़ = एकान्त; कानामीठी = कानों को मीठा लगने वाली;

### पाठार्थ

जुबान को वश में रखने के लिए प्रकृति ने दाँतों के सींखचे लगाए, होठों का परकोटा और मौन का ताला लगाकर ज्ञान की चाबी मनुष्य को सौंप दी। जीभ की बाल-सखी परनिन्दा यह देखकर चिन्तामग्न हुई और अपनी सहेली जीभ को प्रकृति की कैद से मुक्त कराने का उपाय सोचने लगी। एक दिन एकान्त देखकर परनिन्दा मनुष्य के मन के महल में जा पहुँची। परनिन्दा की कर्ण-मधुर बातें सुनकर मनुष्य अपना आपा भूल गया। परनिन्दा तो निश्चय करके ही आई थी; मनुष्य को अपने वश में जानकर धीरे से ज्ञान की चाबी अपने कब्जे में कर ली और मौन का ताला खोलकर जीभ को अपने साथ लिए फुर्ती से बाहर निकल गई।





## भावार्थ

मुख्यतः परनिन्दा की महिमा गाई है कवि ने और सटीक प्रतीकों का उपयोग किया है। सामान्य अनपढ आदमी को भी सींखचों समान पैने दाँत, परकोटे की तरह होंठ और मौन के ताले आदि प्रतीकों में अपना स्वयँ का अक्स दिख जाता है। इस गळगचिए से खेलते समय एक मन्द सी शिशुवत मुस्कान हर खिलाड़ी के होठों पर बरबस आ जाती है, जो स्वयँ के प्रति होती है। अपने आप पर इतना भी हँस लेना जागृति-क्रम में एक सशक्त कदम हो जाता है। स्वयँ को जान लेने की चिर प्यास की तृप्ति की दिशा में पहला कदम अपने दोष देखना ही हो सकता है; अमृत प्राप्ति की कामना से हुआ समुद्र-मंथन पहले विष ही उगलता है जिसे नकारा या फ़ेंका नहीं जा सकता; उसे अपने ही कंठ में धारण करने वाला कोई शिव चाहिए !

परनिन्दा कानों को अच्छी लगती है, आदमी उस रस में भीगा अपना आपा बिसार देता है; यही है ज्ञान की चाबी का हाथ से निकलना। 'ज्ञान' का अर्थ स्कूल-कॉलेज आदि से मिला सूचनाओं का कचरा नहीं, बल्कि अपने प्रति होश की मात्रा से है। परनिन्दा का पहला काम है आदमी को अपना आपा भुला देना। अपना आपा भूलते ही दाँतो के सींखचे और होठों के परकोटे वैसे ही टूट जाते हैं जैसे कृष्ण जन्म के समय वसुदेव की बेड़ियाँ और जेल के दरवाजे टूटे थे। इधर शिशु कृष्ण को लेकर वसुदेव फ़रार, उधर अपनी सहेली जीभ को लेकर परनिन्दा गायब ! जैसे कृष्ण के हाथों कंस का वध निश्चित है वैसे ही परनिन्दा के चलते आदमी का अपना श्रेय संकट में रहता है। ज्ञान की चाबी प्रकृति ने मनुष्य के हाथ सौंपी है, अर्थात कोई दूसरा उसकी 'जागृति' का दरवाजा नहीं खोल सकता ! आदमी को खुद ही प्रयत्न करना होगा। यह गळगचिया भी सिर्फ़ इशारा भर कर सकता है। रोचक इतना है कि कोई शिशु-मना व्यक्ति बार-बार इसके साथ खेलना चाहे। जब भी खेलेगा, परनिन्दा से बचने की प्रेरणा मिलेगी ही, ज्ञान की खोई चाबी फ़िर से हाथ में आ सकती है। बस इतना ही !

## पकने का महत्व

कुम्हार काचै घड़ै नें चाक स्यूँ उतार'र न्यावड़ै री उकळती भोभर में ल्या नाख्यो। घड़ो सै'र बोल्यो – विधाता आ काँईं करी ? कुम्हार हँस'र कयो – पणिहारी रै सिर पराँ इंयाँ सीधो ही चढणूं चावै हो के ?

## शब्दार्थ

काचै = कच्चे, अधपके; चाक = मिट्टी के पात्र बनाने का चक्र; न्यावड़ा = मिट्टी के पात्र पकाने की भट्टी; उकळती = उबलती; भोभर = जलता अलाव;

## पाठार्थ

कुम्भकार ने कच्चे घड़े को चाक से उतारकर जलती भट्टी की लौ में डाल दिया। ताप सहते हुए घड़ा बोला – यह क्या किया विधाता ? कुम्भकार ने हँसकर कहा – पनिहारिन के सिर पर वैसे ही सीधा जा बैठना चाहता था क्या ?





## भावार्थ

आँचलिक जन-जीवन में 'पनिहारिन' एक बहुआयामी संज्ञा है; साहित्य में अनेक सन्दर्भ सहज जुड़ जाते हैं इस संज्ञा के साथ। साहित्य चाहे शब्दों की भाषा में लोककथा, लोकगीत आदि रूप में हो या चित्रकला, मूर्तिकला आदि रूप में; पनिहारिन के सिर पर घड़ा अविनाभाव से जुड़ा ही रहता है। पनिहारिन के साथ घड़े का समीकरण इतना सीधा है कि कुम्भकार चाक पर घड़ा बनाते समय ही पनिहारिन की सुविधा का ध्यान रख लेता है। मिट्टी से घड़ा बनने की प्रक्रिया में चाक पर चढना, कुम्भकार की हथेलियों का कलात्मक स्पर्श और थपकी, फ़िर गर्म भट्टी और अन्त में पानी ठंडा करने की क्षमता का परीक्षण शामिल है। भट्टी में चढने की परम्परा है; जैसे हर व्यक्ति को विवाह करके गृहस्थी की भट्टी में जलने की परम्परा है और हर व्यक्ति इस ताप को खुशी खुशी सह लेता है; वैसे ही घड़ा भी सहता है। जैसे व्यक्ति कहता है – "हे विधाता ! यह मुझे किस पाप का दण्ड मिल रहा है ?" वैसे ही घड़ा भी तो फ़रियाद करेगा कि मुझे ही क्यों इतनी गर्म भट्टी में सिंकना पड़ रहा है ? जैसे आदमी नहीं जानता कि, अपनी गृहस्थी की भट्टी में से गुजर कर ही स्वर्गिक आनन्द देने वाला कोई शिशु उसकी बाहों में खेलने वाला है, वैसे ही घड़ा कहाँ जानता है कि, भट्टी में पके बिना सुन्दर पनिहारिन के सिर पर चढने का सौभाग्य नहीं मिल सकता ! कुम्भकार इस क्रम को जानता है, इसलिए सहजतापूर्वक मुस्कुराकर सुन्दर भविष्य दिखा देता है और कह देता है घड़े को कि थोड़ी देर और तपना होगा इस भट्टी में।
सीधे-सादे बिम्ब उकेर दिए गळगचिए में विधाता कवि ने। प्रणाम।

सन्दर्भ – नन्हीं सी उड़ान, श्राद्ध

## नीम और तरबूज की बेल

नीमड़ै रो रूँख मतिरै री बेल नें हँस'र कयो – म्हारी टोखी तो आभै ने नावड़ै है'र तूँ धूळ पर ही पसर्योड़ी पड़ी है ! मतीरै री बेल बोली – पैली थारै फ़ळ कानी देख, पछै म्हारै स्यूँ बात करीजे !

### शब्दार्थ

नीमड़ा = नीम का पेड़; मतीरा = तरबूज; टोखी = डाली; आभो = आकाश;

### पाठार्थ

नीम का पेड़ तरबूज की बेल से हँसकर कहता है – मेरी डालियाँ तो आकाश को छू रही हैं, जबकि तू धूल में ही पसरी पड़ी है ! तरबूज की बेल बोली – पहले अपने फल की तरफ़ देख, फ़िर बात करना मुझसे !





### भावार्थ

वस्तु का मूल्याँकन उसके फ़ल-परिणाम से किया जाता है न कि उसके भौतिक-दैहिक परिमाप से । जैसा होने से मानव सपरिवार सुखी-संतुष्ट होता है, वैसा होना सार्थक है । जो करने से मानवमात्र को सुख मिले, वह करनी सार्थक है । अब नीम की डालियाँ कितना भी आकाश जितनी ऊँचाई पा ले, उसका फ़ल तो कड़वा ही है; वैसे ही मानव कितना भी ऊँचा राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक-आर्थिक पद पा ले, खुद को पूरा उद्घाटित करने तक अतृप्ति भरी कड़वाहट बनी ही रहती है ! तरबूज का मीठापन जमीन पर पसरी बेल की गरिमा का प्रमाण है । बेल की सार्थकता उसके मीठे फ़ल से आंकी जाती है ।

सन्दर्भ – उद्भव, उत्कर्ष और अन्त; औसान

## दिन और रात

आभै रै अगूणैं पळसै स्यूँ सूरज आयो'र आथूणै पळसै स्यूँ बारै निकळग्यो। बडा आदम्याँ रो आणूँ ही दिन है'र जाणूँ ही रात है।

## शब्दार्थ

अगूणैं पळसै स्यूँ = पूर्व द्वार से; आथूणै = पश्चिम

## पाठार्थ

आकाश में पूर्व द्वार से सूर्य आया और पश्चिमी दरवाजे से बाहर निकल गया। बड़े आदमी का आना ही दिन और जाना ही रात है।





## भावार्थ

इतना सुन्दर गळगचिया है। बड़े आदमी का आना ही दिन और जाना ही रात ! सूरज दिखने में छोटी सी गेंद लगता है, पर वास्तविक कद तो धरती से कई गुना बड़ा है। उसके आगमन से प्रकाश, ज्ञान की रोशनी में कर्मयज्ञ का संचालन, और समस्त भौतिक-आध्यात्मिक यात्राएं चलती हैं; जीवन आगे बढता है। सूर्य का जाना अर्थात रात, अंधकार, शयन, निद्रा और समस्त भौतिक-आध्यात्मिक गतिविधियों को विराम ! कोई महावीर बुद्ध कृष्ण या ओशो कृष्णमूर्ति नागराज आता है तो पूरी मानवता की जागृति यात्रा गति पकड़ती है; दिव्य संभावनाएं करवट लेती हैं। दिव्य पुरुषों की उपस्थिति दिन है। दिव्य पुरुषों की विदाई रात अर्थात उपरोक्त व्यक्तियों के देहत्याग के बाद उनके नाम पर बनते पन्थ-उपपन्थ-सम्प्रदाय आदि की दूकानें जन-गण-मन को भटकाती भरमाती हैं; रात जो हो गई ! रातें तो होती ही हैं चोर लुटेरों दुराचारियों के लिए ! तो दिव्य पुरुषों की अनुपस्थिति में इन बटमारों की बन आती है। खूब चलती हैं इनकी दुकानदारी ! न्याय-कानून सब इनकी सुविधा से ही बनते/चलते हैं। शिक्षा व्यवस्था बटमारी डकैती के नए नए कानून सम्मत मार्ग सुझाती हैं। शीर्ष पदों पर उल्लू और इनकी प्रजाति के जीवों का वर्चस्व स्पष्टतः रात का प्रमाण बनते हैं। धर्मगद्दी और राजगद्दी के शीर्षस्थ जन इनके हाथ में कठपुतली होते हैं।

रातों के ये राजा भूल जाते हैं कि हर रात का सवेरा निश्चित है। सूरज निकलते ही ये सारे उलूक-वंशी ऐसे गायब होते हैं जैसे गधे के सिर से सींग ! समूचा भुवन-मण्डल जगमगा जाता है। सब तरफ़ सकारात्मकत सोच, उत्साह और सक्रियता दिखाई देने लगती है। बुद्धिमान जन इस बहती गंगा में सिर्फ़ हाथ ही नहीं धोते, बल्कि पूरा नहा लेते हैं; कुछ पूरा पी लेते हैं गंगा को ! तार्किक-पण्डित अपनी व्यर्थ की दुकानदारी बचाने की ऊहापोह में किनारे खड़े कोरे रह जाते हैं। बस !

सन्दर्भ - उद्भव, उत्कर्ष और अन्त

----गळगचिया (कन्हैया लाल सेठिया)

## शीघ्र प्रकाश्य साधक-साहित्य की सूची

1- उद्भव उत्कर्ष और अन्त – दूसरा संस्करण (चार भाग)
2- औसान (उपन्यास)
3- कहानी संग्रह
4- नाटक संग्रह
5- शतक सीरिज (अलग-अलग 8 काव्य-संग्रह)
6- विश्व-विषाद योग (श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय की काव्यात्मक टीका)
7- विश्व-विषाद योग भाग-2 (कुण्डली-शतक)
8- टूटता भारत (षड्यन्त्र शतक)
9- धृत्यायन (नई शैली का महाकाव्य)
10- परिवार-सप्तक
11- रामचरितमानस और वेद
12- पर्यावरण शतक
13- सोरठा (सेठिया साहित्य का अनुवाद)
14- शीना हत्या-काण्ड शतक (कुण्डली छन्द में सामाजिक विश्लेषण)
15- सिंगुर के आर्थिक-सामाजिक समीकरण
16- साँप (निर्माणाधीन फ़िल्म की विषय-वस्तु)
17- साधक के पत्र
18- संस्मरण शतक
19- श्राद्ध (जिया गया कर्म-विचार)
20- सिनेमा पहेली शतक
21- टिप्पणी-शतक